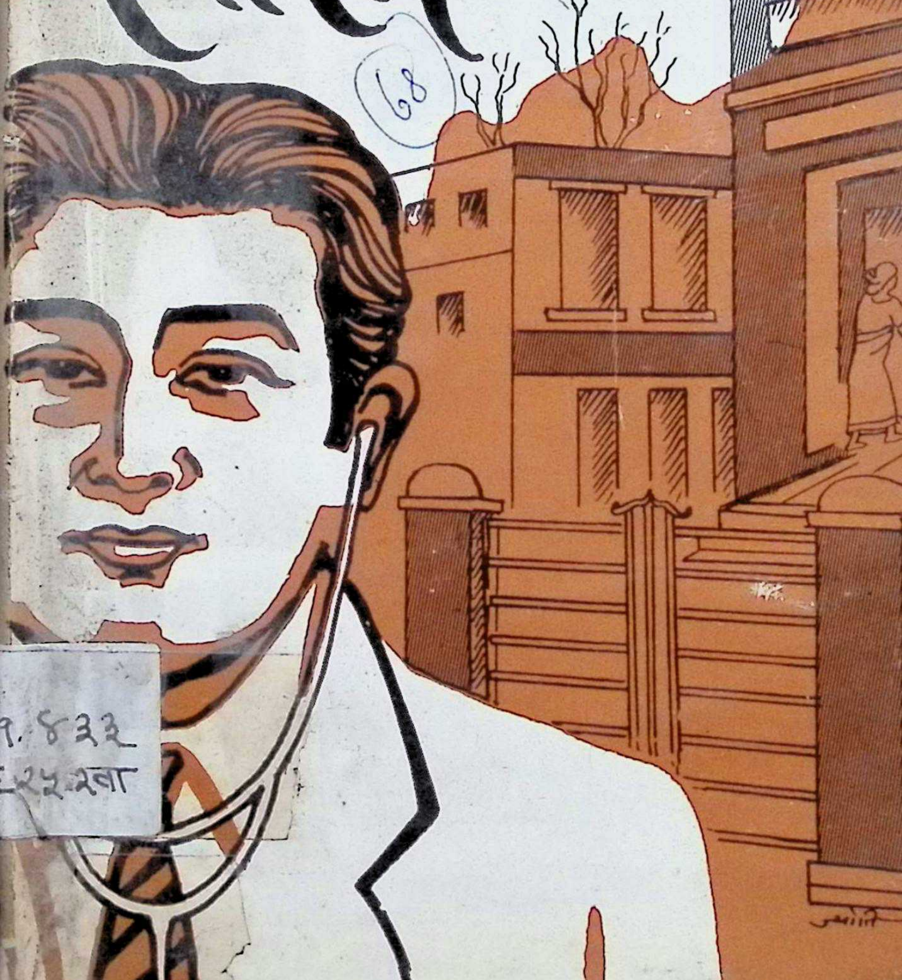
खामोश इमारत

कुलभूषण दीप



इंसान को इमोशनल भी होना चाहिए ज़
पर सिर्फ़ इमोशनल नहीं, सिर्फ़ प्रेक्टि
भी नहीं, क्योंकि कोरा प्रेक्टिकल आ
बहुत मतलबी हो जाता है……इमोश
कब होना है, प्रेक्टिकल कब–– इसका सोच
बहुत ज़रूरी है आदमी के लिए। भावुक
इंसान को उसके भीतर भी उस गहराई त
ले जाती है जहाँ इंसान की रूह होती है
फ़ैसले देती है और यहीं से इंसान की व्या
हारिकता शुरू होती है। यही गहराई फ़ैस
सुनाती है, रूह को जगाती है, और रूहा
दृष्टि से लिया गया कोई भी फ़ैसला ग़ल
नहीं होता। जब कोई फ़ैसला ग़लत न
होता तो इंसान कैसे ग़लत हो सकता है !

खामोश इमारत

सामाजिक उपन्यास

I S B N-81-85051-01-1

मूल्य : 25-00 / संस्करण : 1987 / प्रकाशक : अंशु प्रकाशन, 152/3, जैकब पुरा, गुड़गाँव / मुद्रक : गोपाल प्रिंटिंग प्रेस, न्यू उस्मान पुर, दिल्ली ।

KHAAMOSH IMAARAT (Novel)
Kulbhushan Deep Rs. 25-00

खामोश इमारत

क़ुलभूषण दीप

अंशु प्रकाशन
152/3, जैकब पुरा, गुड़गाँव-122001

रात गहरा गयी थी। हवाओं में मीठी-मीठी ठंड घुल-मिल गयी थी। खुली खिड़की से हवा के हल्के-हल्के झोंके आते, जिस्म से टकराते और रोमांचित कर आगे वढ़ जाते। 'ब्लड बैंक' में आज कोई विशेष काम नहीं था। जो था, उसे निपटा आया था। सामने मेज़ पर एक मोटी किताव औंधी पड़ी थी, उसे उठाने को भी मन नहीं कर रहा था। रेडियो धीमे स्वर में बज रहा था। मेरे अज़ीज़ शायर का नग्मा संगीत और आवाज़ का जादू बिखेर रहा था। हल्की-हल्की सोज़भरी धुन और इसमें तलत की आवाज़ ने समां बांध रखा था। मानो हर लफ़्ज़ मेरे ही दिल को चीरता हुआ निकल रहा था। जैसे-जैसे नग़मा खत्म हो रहा था, मेरी उदासी वढ़ती जा रही थी। मैं उठ खड़ा हुआ, खिड़की से बाहर झाँकने लगा कि तभी तलत ने नग़मे की आखिरी लाइनें गुनगुनायी :

'आज तेरी महफ़िल से उठे
कल दुनिया से उठ जाएँगे।
किसको खबर थी किसको पता था
ऐसे भी दिन आएँगे।
जीना भी मुश्किल होगा
और मरने भी न पाएँगे।

रेडियो बन्द कर मैं खिड़की के पास आ खड़ा हुआ। सामने इमारत खामोश खड़ी थी, बेहद उदास लम्बे-लम्बे सफ़ेदे के दरख्त सर झुकायें खड़े थे, मायूस से कारीडोर सुनसान पड़े थे। कभी-कभार इक्का-दुक्का आदमी आ जा रहे थे। चाँद बहुत पीला था, बिल्कुल ऐसा जैसे कोई 'ऐनीमिक' चेहरा होता है। टिमटिमाते सितारे बोझिल पलकों में

आँसुओं की तरह झलक रहे थे। जब दिल उदास होता है तो सब कुछ उदास और वेरौनक लगता है। ऐसे ही सब कुछ फीका-फीका बोझिल-सा लग रहा था।

'मियाँ आनन्द, क्यों हर दम उदासियों से चिपके रहते हो ? ज़िन्दगी में जो लम्हा तुमने उदासी में खो दिया समझो उसका कत्ल किया…।' ज़हन में कौंध गये उमेश के ये शब्द और सामने दीवार पर उभर आया उमेश का जादुई, चुंबकीय चेहरा, तरोताज़ा चेहरा। लगा, अभी कोई 'जोक' सुनायेगा और कहेगा—'अमाँ यार आनन्द, जब पहली बार किसी इन्सान के दिमाग़ में कोई 'जोक' आया होगा तब वह साला तो हँस-हँस कर ही पागल हो गया होगा।'

मेरे होठों पर भी एक मुस्कराहट रेंग आयी मगर उदास-उदास सी। उमेश की यादों ने घेर लिया मुझे। उमेश ज़िदादिली का दूसरा नाम है। काश ! उमेश यहाँ होता तो एक पल भी उदास न रहने देता मुझे। काश, मेरे ही पंख होते तो मैं इसी क्षण उमेश के पास पहुँच जाता। मैं सोचता रहा, जब थक गया तो वापस अपनी कुर्सी पर आ बैठा। अभी बैठा ही था कि कमरे का दरवाज़ा खुला, सामने सुधा दीदी खड़ी थीं। थका-थका चेहरा, बिखरे-बिखरे बाल, कंधे पर खामोश पड़ा स्टैथो स्कोप।

'अरे दीदी, आप इस वक्त !' मैं चौंक उठा था।

'हाँ जी, मैं ही हूँ ! नहीं आना चाहिए था क्या ?'

'अरे-रे, क्या कह रही हो दीदी ! मेरा यह मतलब नहीं था, मतलब कि आज आपकी 'नाईट' तो नहीं थी !'

'ओ मिस्टर मतलबी, अब छोड़ो भी अपने मतलब को। कोई चाय-कॉफी पिलाओ, बहुत थक गयी हूँ। बहुत काम्पलीकेटिड आप्रेशन था।' स्टैथो एक तरफ़ पटकते हुए दीदी बोलीं और सच ही दीदी के चेहरे से स्पष्ट था कि वह बहुत थकी हुई हैं। आँखें बन्द, चेहरे पर मोहक मुस्कराहट……।

मैं कॉफ़ी बनाने रिफ्रेशमेंट रूम में चला गया।

कॉफ़ी के प्याले मेज़ पर रखते ही दीदी की आँखें खुलीं। बोलीं—

'क्या बात है मिस्टर रिसर्च स्कालर, बहुत उदास नज़र आ रहे हो ?'

'कोई बात नहीं, बस यूँ ही ··' मुझसे कोई जवाब न बन पड़ा ।

'यूँ ही क्या···हर घड़ी यूँ ही मुँह लटकाये रहते हो । अच्छा है तुम्हें कहीं वार्ड में नहीं जाना पड़ता । नहीं तो तुम्हारी यह शक्ल देख कर मरीज़ वैसे ही अधमरा हो जाये । भई, खुश रहा करो । क्या हर वक्त अपनी उदासी की नुमाइश लगाये रहते हो !'

मैं चुपचाप कॉफ़ी सिप करता रहा ।

कोई मेरे कमरे में दाखिल हुआ और उसने रिक्विज़िशन फ़ार्म मेरे हाथों में थमा दिया । ब्लड सैम्पल और फ़ार्म लेकर मैं लैब में गया । ग्रुपिंग की तो काँप गया । ग्रुप था 'ओ.बी.ई.' और सामने टँगा स्टॉक बोर्ड नकार रहा था, एक भी यूनिट नहीं था स्टॉक में ओ.बी.ई. का और फ़ार्म पर साफ़ लिखा था 'चार यूनिट तुरन्त भिजवाइये !'—दस्तखत थे डॉक्टर नारंग के । भीतर ही भीतर सिहर गया मैं ।

'यह मरीज़ आपका क्या लगता है ?' मैंने फ़ार्म लाने वाले से पूछा ।'

'जी, मेरा भाई है ।'

'आप भी ग्रुपिंग कराइए, शायद आपको खून देना पड़े ।'

''खून'''मगर डॉ० साहब तो कह रहे थे, खून वहाँ से मिल जायेगा !'

'जी, मिल तो जायेगा जब आप देंगे । और कौन है आपके साथ ?'

'इस वक्त तो मैं ही हूँ और मैं तो खुद बीमार हूँ ।' कुछ पल खामोश खड़ा रहने के बाद वह बोला—'मैं अभी आता हूँ ।' और चला गया ।

दीदी अभी तक पलकें मूँदे बैठी थीं । मैं भी आकर बैठ गया ।

'दीदी, आप घर जाकर आराम करें ।'

'हूँ···बस, अभी जा ही रही हूँ ।' उनींदे-से स्वर में जवाब दिया दीदी ने । फिर खामोशी छा गयी ।

'आपको डाक्टर साहब ने बुलाया है ।' वह व्यक्ति फिर आ गया था ।

'आप बैठें, दीदी मैं अभी आता हूँ।'

मैं उसके साथ डॉक्टर नारंग के पास गया। अभिवादन किया मगर कोई जवाब नहीं···।

'आपने ब्लड क्यों नहीं दिया इन्हें ?' गुस्से भरी आवाज़ सुनकर सन्न रह गया मैं।

'सर ! ओ-वी-ई की तो एक भी यूनिट इस वक्त स्टाक में नहीं।'

'क्या मतलब ? क्यों नहीं है ? किस लिए खोल रखा है ब्लड बैंक ? क्या करते रहते हो तुम लोग ?···एक भी यूनिट नहीं है···मैं कहता हूँ, अभी जाओ और किसी तरह भी इन्तज़ाम करो खून का।' गुस्से में काँपने लगे थे डॉक्टर नारंग। उनका चेहरा तपे तांबे-सा हो गया था।

मैं सर झुकाये लौट आया। मेरी उदासी और गहरा गयी। कदम उठाना मुश्किल हो गया। कुर्सी पर बैठ कर हुक्म चला लेना कितना आसान है ? कोई किसी की मुश्किल क्यों नहीं समझता ? एक तो कोई खून देने वाला है नहीं और बैंक में एक भी यूनिट नहीं। रात के दो बज रहे हैं···एमरजैन्सी पैनल से भी किसे बुलाया जाय··· ? तभी मेरी सोचों में वह चेहरा घूम गया जिसे खून चाहिए था। ऐसा मालूम पड़ा मानो गिड़गिड़ा रहा हो। मगर डाक्टर नारंग का चेहरा याद आते ही कड़वाहट-सी घुल गयी मुँह में और ज़ायका कसैला हो गया। सोचें और गहरी हो गयीं। मैं वापस अपने कमरे तक आ पहुँचा था। मेरा लटका हुआ चेहरा देखते ही सुधा दीदी ने सवाल किया—

'क्या बात हुई ?' और इस वक्त दीदी का बोलना भी चुभ गया मुझे। मैं खामोश रहा, कोई जवाब नहीं बन पाया मुझसे। भीतर ही भीतर कुलबुला रहा था मैं, खौल रहा था। हज़ार बार कहा है कि हर ग्रुप का कुछ न कुछ स्टाक ज़रूर रहना चाहिए। मगर किसी के कान पर जूँ ही नहीं रेंगती। कुछ करो तो बेकार इल्ज़ाम लो, बेकार बदनामी हासिल करो। जब ज़रूरत हो तब ही भाग दौड़ करो।

इन्तज़ाम न हो सके तो बदनामी···गालियाँ···आदमी करे तो क्या करे !

'डॉक्टर साहब कह रहे हैं, खून जल्दी चाहिए ।' वह आदमी फिर आ गया ।

'मैं बन जाऊँ क्या ?' मैं गुस्से से उबल पड़ा ।

'अरे भैया, यह क्या···?' मुझे झटकते हुए दीदी बोली ।

'तुम खून क्यों नहीं देते ?' मैंने चीखते हुए उस आदमी से कहा ।

'मैंने बताया न मैं स्वयं बीमार हूँ ।' वह बड़े सहज भाव से बोला ।

मुझे लगा डॉक्टर नारंग से मेरी बातचीत सुनकर वह और ज़्यादा बल पा गया है ।

'क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?'

नयी आवाज़ सुनकर मैं चौंक पड़ा ।

'आइए ।' किसी हद तक मैंने अपना रूखापन छिपाते हुए कहा ।

'सर, मैं खून देने आया हूँ । मेरा ग्रुप ओ. बी. ई. है । मैंने डॉक्टर नारंग से आपकी बात सुनी, सुनकर रोक नहीं सका खुद को ।'

'ओह···!' मैंने एक गहरी साँस ली ।

आप पहले मेरा खून ले लीजिए । मेरे दो तीन दोस्त और हैं जिनका ग्रुप भी ओ. बी. ई. है, मैं उन्हें भी ले आता हूँ ।'

मेरा सर झुकता चला गया ।

'क्या नाम है आपका ?'

'जी, शरद राय ।' वह बड़ी ही नम्र आवाज़ में बोला ।

'अरे आप ही हैं मिस्टर शरद···जिन्हें मैडल मिला था छब्बीस जनवरी को ।'

'जी हाँ···।'

'वाक़ई आप उसके हक़दार हैं ।'

कुछ देर के लिए खामोशी छा गयी । मिस्टर शरद राय का खून प्लास्टिक बैग में भरने लगा ।

'आइए मिस्टर शरद, आप कुछ रिफ्रेशमैंट ले लीजिए ।' शरद को उठाते हुए मैं बोला ।

'नहीं सर, पहले मैं अपने दोस्तों को ले आऊँ। तब सभी एक साथ ही चाय पी लेंगे।'

शरद चला गया। मैं क्रास-मैच करने लगा।

'भैया, आज आप मेरा भी ब्लड ले ही लीजिए।' दीदी मेरे पीछे आ खड़ी हो गयीं।

मेरी निगाहें उठीं और फिर उस देवी के चरणों में झुक गयी।

दीदी से बहस करना ठीक नहीं समझा मैंने, जानता हूँ मना करने पर भी नहीं मानेंगी।

सुर्ख लाल रंग का खून दीदी की बाजू से निकल कर प्लास्टिक के बैग में जमा हो रहा था। यह चंद औंस खून अभी किसी और के जिस्म में दौड़ेगा और उसे नयी जिंदगी देगा। कितना बड़ा दान है यह खून का दान और सामने दीवार पर टँगे वे शब्द—'रक्तदान···जीवन-दान'···मानो सचमुच जिंदगी पा गये थे।

नीडल बाजू से बाहर निकाल लिया मैंने। दीदी पलकें मूंदे गहरी सोच में खोई हुई थीं—ऐसा उनके चेहरे से साफ़ ज़ाहिर था।

दो यूनिट ब्लड चपरासी के हाथ वार्ड में भिजवा कर मैं और दीदी अपने रूम में आ गये।

'भैया ये लोग इतना झूठ कैसे बोल लेते हैं ?' दीदी ने बैठते ही सवाल किया।

'दीदी यह तो कुछ भी नहीं। अगर सिफारिश न लेकर आया होता तो यह आदमी इस बात से भी इन्कार कर देता कि मरीज़ इसका भाई है।'

'मिस्टर रिसर्च स्कालर, तुम्हें इसमें भी रिसर्च करना चाहिए कि किस तरह लोगों को तैयार किया जाय कि वे अपने-आप खून देने आयें।'

इससे पहले कि मैं कुछ कह पाता, बाहर से डॉक्टर नारंग के गुर्राने की आवाज़ सुनायी पड़ी—

'तुम लोग यहाँ गप्प हाँक रहे हो, खून का इन्तज़ाम नहीं हुआ अब तक ?' किन्तु सुधा दीदी को देखकर डॉक्टर नारंग कुछ ठिठक गये।

'डॉक्टर सुधा, आप··· ।'

'यस सर, आप्रेशन करके आयी थी। सोचा, भाई के पास बैठ कर कॉफ़ी पी लूँ। मगर सर, आपने तो हद ही कर दी।'

'मैंने क्या किया है?' बड़ी कसैली आवाज़ थी डॉक्टर नारंग की।

'सब प्राब्लम इन्हीं लोगों ने खड़ी की है।'

'हमने क्या किया है?' मेरी आवाज़ भी तीखी थी।

'ब्लड बैंक में ब्लड न हो तो प्राब्लम नहीं तो और क्या है?' रुआबदार आवाज़ थी।

'ब्लड बैंक में कुएँ खुदे हैं कि जब जितना चाहो ले जाओ। क्यों सिफ़ारिश करते हैं, क्यों नहीं उन लोगों पर ज़ोर देते कि वे लोग अपना खून दें।'

'तमीज़ से बात करो आनन्द।'

'यह क्या झगड़ा शुरू कर दिया है?' दीदी ने मुझे खींचते हुए कहा।

'ठीक है, मैं तुम्हें देख लूँगा!' घूरते हुए डॉक्टर नारंग चले गये वहाँ से।

'पता नहीं कहाँ-कहाँ से आ जाते हैं इडियट कहीं के··बस्टर्ड···।'

'लो भैया, पानी पियो।'

पानी पीते हुए भी मेरा सारा शरीर गुस्से से काँप रहा था। पानी पीकर भी मेरी झुंझलाहट कम नहीं हुई थी।

तभी शरद अपने दो साथियों के साथ आ गया। मुझे इस रूप में देखकर वह चौंक पड़ा। फिर दीदी को देखकर बोला—

'डाक्टर सुधा, आप···?'

'शरद जी, आप अपने साथियों को लेकर अन्दर चलिए, मैं अभी आती हूँ।'

शरद के दोनों दोस्तों को दीदी ने ही प्रिक दिया और तब दो यूनिट खून और भेज दिया।

चाय पीने के बाद शरद के मित्र चले गये।

शरद मेरे सामने था और उसके सामने मैं खुद को अपराधी

महसूस कर रहा था। शरद तो ब्लड बैंक का कर्मचारी नहीं है, जो काम मुझे करना था वह उसने कर दिया।

'सुधा जी, कल आप मेरी बहन का आप्रेशन करने वाली हैं न !' शरद ने अचानक एक रहस्योद्घाटन-सा किया।

'कल तो थियेटर में मुझे सिर्फ एक आप्रेशन करना है मिस सविका, क्या वही आपकी बहन हैं ?'

'जी' शरद की आंखें नम हो आयीं।

'ओह ·' एक गहरी साँस ली दीदी ने, पीड़ा की धूप लहलहा गयी उनके चेहरे पर।

'ओ. के. भैया, मैं चलूँगी। ज़्यादा सोचना मत। बहुत सोचते हो···।' दीदी धीमे-धीमे कदम रखती हुई ब्लड बैंक से बाहर चली गयी।

शरद मेरे सामने था।

'सर, मैं आपसे ब्लड डोनेशन के बारे में कुछ मालूम करना चाहता हूँ।'

'कर लेना यार···और देखो, मुझे 'सर'-'सर' मत कहा करो। तुम तो मेरे छोटे भाई-से हो।'

'जी'।

'कल शाम मुझे फ़्लैट पर मिलना। मैं तुम्हें बहुत-कुछ बताऊँगा। अब जाओ और आराम करो।'

शरद चला गया।

मुझे अब भी नारंग पर गुस्सा आ रहा था। उसका खयाल आते ही तन-बदन में आग-सी लग गई। कुर्सी पर बैठकर हुक्म चलाना कितना आसान है···। एक झनझनाहट-सी हुई बदन में, कोई मेरे भीतर से कोसने लगा मुझे—'क्यों जी, क्या आपका फर्ज नहीं बनता कि आप ब्लड का इन्तज़ाम करें ! उल्टे मियाँ जी औरों पर झुंझला रहे हैं। क्या सोचती होंगी सुधा दीदी ?'

सुधा दीदी का खयाल आते ही एक अजीब-सी शान्ति मिली मन को। ऐसा महसूस हुआ मानो चंदन का शीतल स्पर्श और चैन-सा आ गया। मेरी पलकें मुंदने लगीं। एक पर्दा-सा फैला जिस पर एक तस्वीर

अचानक उभरी, चेहरे पर मासूमियत, लबों पर फूलों-सी नर्म रेशमी मुस्कराहट, आँखों में बेपनाह मुहब्बत···

सुधा···यानि जिंदगी का दूसरा नाम। कुल तीन ही वरस पहले की तो बात है। मैं नया-नया कालिज में आया था। मैं वचपन से ही अकेलापन पसन्द करता रहा हूँ, ज़्यादा मेल-जोल अच्छा ही नहीं लगता मुझे। यहाँ भी मैं कॉलिज, हस्पताल, ब्लड बैंक, अपने फ़्लैट और लाइब्रेरी की चारदीवारी से बाहर नहीं गया। यहाँ आते ही पहले दिन मुझसे अनिल टकराया था और हम एक दूसरे को देखकर हैरान रह गये थे। बरसों पुराने दोस्त अचानक सामने आ खड़े हों तो अजीव ही लगता है—

'अरे शायरे आज़म, तुम यहाँ कैसे?'

'मेरी पोस्टिंग यहीं हुई है।' मैंने कहा।

'तब तो बहुत मज़ा रहेगा। तुम्हारी बहुत याद आती थी। आज तुम्हें अचानक पाकर कितनी खुशी हुई, मैं बता नहीं सकता। तुम्हारी तरह शायर होता तो चन्द शेर ज़रूर कह डालता।' अनिल मुझसे लिपट गया था।

हमारी मुलाकातें अक्सर होती रहतीं। दिसम्बर के दिनों में कॉलिज का वार्षिक उत्सव था। तब अनिल ने मेरी मुलाकात उत्सव के इंचार्ज प्रोफेसर डॉक्टर पाल से करायी। डॉक्टर पाल ने जब मेरी रुचियों को जाना तो स्टेज सेक्रेटरी का भार मुझे सौंप दिया। उस समारोह की रात एक यादगार बन गयी। मैंने भरपूर कोशिश की थी उस प्रोग्राम में जान फूँकने की और काफ़ी हद तक कामयाब भी रहा। डॉक्टर पाल के ज़ोर देने पर मैंने अपनी जो कविता पढ़ी उसकी खूब चर्चा हुई।

'बहुत-बहुत मुबारक डॉक्टर आनन्द !' सहसा सुरीली आवाज़ ने मुझे चौंका दिया। एक बहुत ही मासूम-सी खूबसूरत लड़की हाथ जोड़े खड़ी थी।

'आप हैं डॉक्टर सुधा इस कॉलिज की कोहेनूर !' अनिल ने परिचय कराया।

'नमस्कार !' अनजाने ही मेरे दोनों हाथ जुड़ गये।

सुधा जी के होठों पर एक ऐसी मुस्कराहट थी जो किसी को भी बाँध कर रख दे। एक ऐसी सादगी, एक ऐसा नूर जो किसी को भी अपनी ओर खींच सकता था।

'सचमुच आनन्द जी, ऐसा प्रोग्राम हमने ज़िंदगी में नहीं देखा और आपकी नज़्म, कमाल···हैरत है कि इतनी-सी उम्र में इतनी बड़ी-बड़ी बातें !'

यही था सुधा जी से मेरा पहला परिचय जो दिलो दिमाग़ पर एक गहरी छाप छोड़ गया। सोच रहा था, कोई इतनी छोटी उम्र में इतनी शोहरत हासिल कर सकता है जितनी सुधा जी ने की है ? किसी से भी पूछ लीजिए। वह यही कहेगा, सुधा देवी है।

सुधा जी से मेरी मुलाकातें होती रहतीं। उनके चेहरे पर एक अनोखी मुस्कराहट होती और उस मुस्कराहट में फूलों की गुनगुनाहट होती। सुधा जी का स्पर्श इतना ममत्व भरा होता कि आत्मा की गहराइयों तक उतर जाता। बातें करतीं तो घंटों बीत जाते। वार्ड ब्वॉय से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ तक उनकी बातों में शामिल होतीं। कौन-सी फ़िल्म नयी लगी, कौन एक्टर नया आया है, किस मौसम में क्या अच्छा होता है, सब का ज्ञान रहता है सुधा जी को। अब 'आप' से 'तुम' पर उतर आयी थीं वह।

एक शाम मैं लाइब्रेरी में दाखिल हुआ तो देखा सामने ही सुधा जी बैठी हैं, इशारे से बुलाया मुझे। मैं करीब गया तो बोली, 'आनन्द, आज तुमसे बातें करने को बहुत मन कर रहा है। चलो, कहीं घूमने चलते हैं।'

हम लोग कॉलिज से बाहर निकल आये। सूर्य लगभग डूब चुका

था। आकाश पर गहरी लालिमा थी पश्चिम में। हम उसी तरफ़ बढ़ रहे थे एक पगडंडी पर जो खामोश पड़ी थी।

'आनन्द, मुझे ऐसा महसूस होता है कि हमारे बीच एक आत्मिक सम्बन्ध बन गया है। तुम्हारा क्या खयाल है?' आवाज़ में इतनी मिठास थी कि लगा कानों में अमृत घुल गया।

'हाँ, मैं खुद भी कुछ ऐसा ही महसूस करता हूँ। जब तक दिन में आपको मिल नहीं लेता, बड़ी बेचैनी-सी रहती है।'

'आनन्द, क्या नाम दोगे इस रिश्ते को!'

'सुधा जी, मेरे तो कोई है नहीं। यहाँ जब भी आपको देखता हूँ बड़ा चैन मिलता है। ऐसे महसूस होता है मानो बड़ी बहन सामने हो··।'

'ओह आनन्द···!' कहकर उन्होंने मेरा हाथ थाम लिया।

'दीदी···' सुधा दीदी के दोनों हाथ चूम लिये मैंने। जाने कब तक सुधा दीदी मुझे थपथपाती रहीं।

वक्त अपनी रफ्तार से चलता रहा दिन···रात···रात-दिन वक्त गुज़रता गया।

एक गहरायी हुई शाम थी। मैं जरनलर्स से कुछ नोट्स ले रहा था कि एकाएक किसी ने लगभग मुझे धकेल दिया। मैं गिरते-गिरते बचा। सँभल कर देखा तो सामने सुधा दीदी खड़ी थीं···तर आखें, उड़ी-उड़ी रंगत···।

'जल्दी चलो, मुझे क्या देख रहे हो? पहले नहीं देखा क्या कभी?' आंसुओं से भीगी हुई आवाज़ थी।

तेज़-तेज़ कदमों से हम हॉस्पिटल को चल दिये।

'बात क्या है?' मैंने पूछा।

'रज्जू का एक्सीडेंट हो गया है।'

रज्जू सुधा का छोटा भाई था। हम 'कैजुएल्टी' में पहुँचे, सामने बेड पर रज्जू लेटा था चारों तरफ़ से घिरा हुआ। डॉक्टर पाल, डॉक्टर प्रकाश···और भी कई डॉक्टर थे, नर्सें थी और कर्मचारी थे।

'भैया, यह लो ब्लड सैम्पल। जल्दी जाकर सात आठ···दस यूनिट

तक अरेंज करो।'

सैम्पल लेकर मैं दौड़ता हुआ ब्लड बैंक पहुँचा। डॉ० जैन ड्यूटी पर थे।

'डॉ० जैन, यह लो सैम्पल और दस यूनिट अरेंज कर दो···जरा जल्दी!' मैं बुरी तरह हाँफ़ रहा था।

'क्या हुआ डॉ० आनन्द, तुम्हारे तो होश उड़े हुए हैं?'

'प्लीज़ डॉ० जैन, जल्दी कीजिए रज्जू तो थियेटर पहुँच गया होगा।'

'रज्जू कौन··· ?'

'सुधा दीदी का छोटा भाई है। बहुत बड़ा एक्सीडेंट हुआ है।'

सैम्पल लेकर डॉ० जैन चले गये।

मैं, अनिल और दो तीन साथी थे। हम सब ब्लीडिंग रूम चले गये खून देने के लिये। सबसे पहले मैं खून देकर बाहर आया। तब तक खून थियेटर में पहुँचाया जा चुका था। मैं तेज़-तेज़ कदमों से थियेटर की तरफ़ लपका। थियेटर के बाहर ही बैंच पर सुधा दीदी बैठी हुई थीं पलकें मूँदे···बुदबुदाते होंठ···ज़रूर ही प्रार्थना कर रही होंगी रज्जू के लिए।

'आ गये भैया, यह लो, ये इंजैक्शन ले आओ।'

'ये इंजैक्शन तो यहाँ हैं दीदी।'

'हाँ, मुझे मालूम है, मगर जो मैं कह रही हूँ वही करो। ये पैसे ले लो।'

दीदी की आखिरी बात पर ध्यान दिये बिना ही मैं तेज़ी से मुड़ा और मैडिकल स्टोर की तरफ़ भागा।

इंजैक्शन लेकर थियेटर वापिस आया तो देखा दीदी नहीं हैं। वार्ड ब्वाय से कपड़े लेकर पहने और थियेटर की तरफ़ बढ़ गया।

'डॉ० पाल और डॉ० राय रज्जू के शरीर पर झुके हुए थे। पेट खुला हुआ था। हर तरफ़ सन्नाटा छाया था। 'लिवर' और एक गुर्दा बुरी तरह कुचले गये थे। एक तरफ़ सुधा दीदी खड़ी थीं···आँखों से उन्होंने मुझे बाहर चलने का इशारा किया। बाहर आते ही दीदी मुझसे लिपट गयीं और फूट-फूट कर रोने लगीं। मैं असहाय-सा खड़ा उनके आँसू

पोंछता रहा। अपने आँसू भीतर ही भीतर पीता रहा। काफी देर बाद सुधा दीदी सम्हलीं। उनका मुँह धुलाकर रूमाल से पोंछते हुए मैंने कहा—'दीदी अगर आप ही हिम्मत हार गयीं तो और लोगों का क्या होगा ?'

'जाने क्यों रज्जू के बचने की मुझे कोई आशा नहीं रही भैया !'

हम दोनों अपनी-अपनी सोचों में खो गये। दो घंटे बीत गये··· थियेटर का दरवाज़ा खुला, सिस्टर मीरा बाहर आयीं।

'सर, आपको डॉ० पाल ने बुलाया है।' बड़ी उदास आवाज़ थी।

सुधा दीदी चौंककर खड़ी हो गयी।

'मीरा रज्जू को क्या हुआ, बताओ···?'

मीरा खामोश···

'मीरा···रज्जू···नहीं रहा न ?' सुधा दीदी अचेत होकर मेरी बाहों में झूल गयीं। मीरा का सर झुक गया···आँखों से आँसू बह निकले।

दीदी को मीरा के हवाले कर मैं थियेटर में पहुँचा। डॉ० पाल और डॉ० राय बाहर ही खड़े थे।

'आनन्द बेटे···' डॉ० पाल मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए बोले।

'सर, सुधा दीदी बहुत पहले जान गयी थीं कि रज्जू नहीं बचेगा। आप प्लीज़ उन्हें देखिए, होश खो बैठी हैं।'

डॉ० पाल तेज़ी से बाहर की तरफ़ बढ़े।

मैं भी बोझिल कदमों से बाहर चला आया। दीदी होश में आ चुकी थीं। मुझे देखते ही उठ खड़ी हुईं और लिपट गयीं मुझसे··· ।

'क्या जवाब दूँगी भैया किसी को···! मैं उसे ही न बचा सकी जिसने मुझे औरों को बचाने के लिए डॉक्टर बनाया···' सिसकियाँ बढ़ गयीं थीं। वह लगातार रोये जा रही थीं। मैं बुत बना खड़ा था। किसी तरह थके कदमों से सुधा दीदी को सहारा देकर बाहर ले आया अँधेरा गहरा गया था। सब लोग सुधा दीदी के ग़म में शरीक थे··· । वह सबकी अपनी जो थीं··· ।

रोते-बिलखते रात बीत गयी···कितनी दर्दनाक और डरावनी रात थी !

सुबह हुई । रज्जू का बेजान शरीर श्मशान घाट पहुँचाया गया । जब सुधा दीदी ने मुझे चिता में आग देने को कहा, वह पल इतना भारी था कि मेरा विश्वास डगमगा गया ·· काँपते हाथों से चिता को आग दी···रज्जू का बेजान शरीर लपटों की भेंट हो गया ।

सुधा दीदी कुछ दिनों के लिए घर चली गयीं । मैंने साथ चलने को कहा तो बोली—'भैया, तुम यहीं रहो । वहाँ के लोग बहुत ही घटिया क़िस्म के हैं, जाने क्या-क्या बातें बनायेंगे ।'

मैं मन मसोस कर रह गया ।

पन्द्रह दिन बाद सुधा दीदी लौटीं तो लगा, जैसे बहुत-कुछ खो आयी हैं । होठों पर सदा अठखेलियाँ करने वाली मुस्कराहट ग़ायब थी, आँखें बेरौनक, चेहरा पथराया हुआ । वह अपना होस्टल का कमरा छोड़कर मेरे फ्लैट में आ गयीं ।

सुधा दीदी के व्यवहार में भारी परिवर्तन आ गया था, हर दम चहकने वाली, मुस्कराने वाली वह मूर्ति खामोश हो गयी थी···एक ठहराव आ गया था ज़िन्दगी में । न खाने पीने की सुध, न ढंग का पहनना । हर पल मरीज़, किताबें, खामोशी, उदासी, पीड़ा को पीने की कोशिश···एक दिन मुझसे सहा नहीं गया । मैं फूट-फूट कर रोने लगा । सुधा दीदी परेशान हो उठीं··· ।

'क्या बात है भैया ?'

'मुझसे आपकी यह हालत सही नहीं जाती ।'

'क्यों बेकार अपना जी जलाते हो भैया, कोशिश करूँगी, सम्हल जाऊँ ।'

और सच ही सुधा दीदी सम्हल गयीं । पहले-सा रूप-रंग तो नहीं लौटा मगर काफ़ी कुछ बदल गयीं ।

तभी एक और घटना घटी । एक सुबह मैं कुछ देर से उठा, सुधा दीदी हॉस्पिटल जा चुकी थीं । मंजन कर मैं जैसे ही चाय बनाने रसोई की तरफ बढ़ा कि फोन की घंटी बजी···

'हैलो ।'

'सुधा जी हैं क्या ?'

'जी नहीं, वह तो जा चुकीं। कहिए, क्या बात है ?'

'आप कौन ?'

'मैं ··आनन्द · सुधा का भाई।'

'ओ···आनन्द जी, एक बहुत बुरी खबर है···सुधा के पापा नहीं रहे।'

'क्या···!'

फ़ोन कट चुका था।

मैं लड़खड़ाये कदमों से हॉस्पिटल की ओर बढ़ा···मेन गेट पर डॉ० पाल मिल गये।

'कैसे हो आनन्द, ये क्या मातमी सूरत बना रखी है ? खैरियत तो है न ?'

'सर, बहुत बुरा हुआ सर···क्या होगा···कैसे कहूँ सुधा दीदी से मुझमें तो हिम्मत है नहीं···?'

'क्या बात है आनन्द, कुशल तो है ?'

'कहाँ सर ! सुधा दीदी के पापा नहीं रहे। कैसे झेल पायेंगी···।'

'ओह···वैरी सैड···यह तो बहुत बुरा हुआ। सुधा बिटिया पहले ही बहुत दुःखी है। यह तो तुम हो जिसने उसे सम्हाल रखा है···खैर··· चलो, मैं चलता हूँ।'

हम दोनों सुधा दीदी के वार्ड की तरफ़ चल दिये।

'सर···! आप ही दीदी को इन्फ़ार्म कीजियेगा,' मैं धीरे से बड़बड़ाया।

वार्ड के दरवाज़े पर मुझे देखते ही सुधा दीदी बोलीं—

'क्यों जनाब, इतने भुलक्कड़ कब से हो गये कि कपड़े बदलना भी भूल गये ! देखा अंकल, भैया का दिमाग ! चले हैं मियाँ जी रिसर्च करने··· । आप लोग मेरे रूम में बैठिए, मैं अभी राऊण्ड पूरा करके आती हूँ।'

डॉक्टर पाल फुसफुसाये—'आनन्द, इसे राउण्ड पूरा करने दो, हम बैठते हैं उधर।'

मैं सोच रहा था, बड़े अर्से के बाद आज दीदी के होठों पे मुस्कराहट देखी थी···आज फिर छिन जायेगी···हे भगवान ! क्या सारे ग़म दीदी के लिए ही जमा कर रखे थे तूने !

'अंकल !' तभी सुधा दीदी की चहकती आवाज़ सुनायी दी—'क्या शिकायत की है भैया ने ?'

'सुधा बेटे···!' डॉक्टर पाल धीरे-से बोले—'तुम छुट्टी की अर्ज़ी दे दो और मेरे साथ चलो···।'

'क्यों अंकल ? क्या भैया को कोई लड़की पसन्द आ गयी है ? देखो तो कैसे सर झुकाये शरमा रहे हैं जनाब ।'

दीदी को शरारत सूझ रही थी···इधर मेरा दिल तड़प रहा था ।

'चलो बेटी सुधा, जल्दी करो ।'

'ओ. के. अंकल, मैं अभी आयी ।'

तभी डॉक्टर शर्मा आ गये ।

'गुड मार्निंग सर !'

'हैलो आनन्द !'

मैंने धीरे-से सिर उठाया । मेरी आँखों में आँसू देखकर डॉक्टर शर्मा बोले—

'क्या बात है आनन्द, तुम इतने परेशान क्यों नज़र आ रहे हो ? डॉक्टर सुधा कहाँ है ? उन्हें थियेटर भेजना है अभी, बड़ा अर्जेंट केस है ।'

'किसी और को भेज दो डॉक्टर शर्मा, सुधा बिटिया नहीं जा सकेंगी ।'

'मगर सर, डॉक्टर सुधा का जाना बहुत ज़रूरी है ।'

'शर्मा प्लीज़, समझने की कोशिश कीजिए । सुधा नहीं जा सकतीं । अभी अभी खबर मिली है, सुधा के पापा नहीं रहे ।'

'नहीं···! नहीं···!!' सहसा सुधा दीदी की चीख सुनायी दी । जिस बात के लिए इतनी भूमिका बांधी जा रही थी वह अचानक उनके कान में पड़ गयी थी । दोनों बाहों से मुझे झिझोड़ती हुई वह फट पड़ीं—'यह···यह···कैसे हो गया ?'

'वह···अभी···फ़ोन आया था···।' मैंने रुँधे गले से जवाब दिया।

एकाएक जाने दीदी में कैसे तबदीली आ गयी—

'चलिए डॉक्टर शर्मा, मैं थियेटर चलती हूँ। इस वक्त मैं डॉक्टर हूं, सुधा नहीं। सुधा के पापा तो उसी दिन नहीं रहे थे जिस दिन रज्जू ने दम तोड़ा था।'

और वह बिना एक पल भी रुके थियेटर चल दीं।

मैं फौरन अनिल से मिला।

'अनिल, अपनी गाड़ी दे दो दो चार दिन के लिए।'

'आनन्द, मैं खुद तुम्हारे साथ चलूँगा।'

वह मेरे साथ मेरे फ्लैट पर आ गया। हम चुपचाप बैठकर सुधा दीदी का इन्तज़ार करने लगे।

घन्टे भर बाद सुधा दीदी लौटीं। उनके चेहरे पर उदासी के गहरे साये थे।

'भैया, जल्दी से तैयार हो जाओ, अब की बार तुम्हें मेरे साथ चलना है।'

'मैं तो तैयार बैठा हूँ, अनिल भी चल रहा है, इसी की गाड़ी में चलेंगे।'

'इस बेचारे को क्यों मातम में घसीट रहे हो?'

'सुधा जी, क्या हम इतने गये-बीते हैं कि··· आपका ग़म भी नहीं बाँट सकते···।'

अनिल ने यह बात इतनी मासूमियत से कही थी कि सुधा दीदी और मेरी आँखें नम हो आयीं।

अनिल ड्राइव कर रहा था। मैं उसके साथ बैठा खामोश सड़क को घूर रहा था। सुधा दीदी पिछली सीट पर पलकें मूँदे बैठी थीं। कुछ क्षण बाद अचानक उन्होंने खामोशी तोड़ी—

'अनु, मुझे बीनू और नीरू की चिंता है। दोनों ब्याह के लायक हो गयी हैं। चाहती हूँ उन्हें अपनी मंज़िल पर पहुँचा दूँ तो आज़ाद हो जाऊँ···।'

एक बार तो मन में आया कि पूछूँ 'अपना भी कुछ सोचा?'

लेकिन सोचा, क्या फ़ायदा, यही कहेंगी 'मैं तो भीतर से खोखली हो गयी हूँ, कब ढह जाऊँ कुछ पता नहीं।' मुझे चुप देखकर फिर बोलीं—

'तुमने जवाब नहीं दिया अनु।'

'दीदी जैसा आप चाहती हैं वैसा होगा, इतना ही कह सकता हूँ।'

फिर खामोशी छा गयी। स्पीडो मीटर की सुई साठ और सत्तर के बीच कांप रही थी। अनिल बड़ी होशियारी से ड्राइव कर रहा था। किलोमीटर के पत्थर, जिन पर दूरियाँ अंकित थी, निकलते जा रहे थे।

'अंबाला पाँच किलोमीटर।'

हम शहरी हद के भीतर दाखिल हो रहे थे। महेश नगर भी पांच किलोमीटर के लगभग पड़ता है बस अड्डे से। कार की रफ़्तार कुछ धीमी हो गयी थी। महेश नगर की सीमा में प्रवेश करने पर अनिल ने मुझसे पूछा, 'किधर मुड़ना है ?'

'बाएँ हाथ मोड़ लो, गली के आखिर में जो मकान है वहीं जाना है।'

'मगर गाड़ी तो गली के बाहर ही रोकनी होगी, गाड़ी तो भीतर जा नहीं पायेगी।'

कार बाहर ही रोक कर हम लोग गली में चले। दूर से ही रोने चिल्लाने की आवाज़ें आ रही थीं।

सुधा दीदी के घर के भीतर दाखिल होती ही वीना और नीरू लिपटकर रोने लगीं।

अर्थी उठी। सब लोग श्मशान की ओर चल पड़े। एक बार फिर सुधा दीदी का हुक्म मुझे मानकर चिता को आग देनी पड़ी।

लौटते समय शाम ढल चुकी थी। हल्का-हल्का अँधेरा लहरा रहा था। लोग बतिया रहे थे···अच्छे कर्म करने चाहिएँ, भगवान को याद रखना चाहिए···और जाने क्या-क्या। ये लोग यहीं आकर यह सब सोचते हैं। घर पहुँचते ही भूल जाते हैं सब···भगवान का ध्यान भी यहीं आता है...।

घर पहुँचे तो अँधेरा पूरी तरह फैल चुका था। नहा धो बैठे तो वीनू चाय ले आयी।

'भैया, आप चाय पीकर मामा जी से मिल लें।' वीनू बोली।

'तुम चलो, मैं आता हूँ। मामा जी हैं कहाँ ?'

'ऊपर के कमरे में।'

चाय पीने के दौरान खामोशी छायी रही।

'अनिल, तुम या तो यहीं रैस्ट कर लो या मिश्रा के पास चलो, मैं भी अभी आ जाऊँगा।'

'मैं मिश्रा के पास ही जाता हूँ।' अनिल उठ खड़ा हुआ और बोला—'ये चाबियाँ तुम रख लो, शायद ज़रूरत पड़ जाय।'

कार की चाबियाँ चुपचाप मैंने ले लीं और ऊपर के कमरे की तरफ़ चल दिया। सामने बरामदे में सुधा दीदी औरतों से घिरी बैठी थीं, सफेद साड़ी, मातमी चेहरा, आँखों में आँसू···ऐसा महसूस होता था जैसे बेवक्त बूढ़ी हो गयी हो दीदी! जाने क्या-क्या बहस हो रही थी···हर कोई अपनी अलाप रहा था···कोई सुधा की अम्मा की बातें कर रहा था कोई रज्जू की, कोई उस पापा की, कोई सुधा की···।

'किचन' में रात के खाने की तैयारी हो रही थी। कुछ भी हो, इस दुनिया में पेट की भूख नहीं मरती···। वीनू और नीरू दोनों सर झुकाये खाना बनाने की तैयारी में लगी थीं—और भी कोई था वहाँ जिसे मैं नहीं जानता था।

सीढ़ियाँ चढ़कर मैं ऊपर पहुँचा तो देखा, मामा जी सामने बैठे सिगरेट फूँक रहे हैं।

'कौन···?'

'जी मैं हूँ···आनन्द।'

'आओ बेटे···इधर बैठो।'

मैंने बैठते ही पूछा—'कोई खास बात है मामा जी ?'

'हाँ बेटा!' कुछ क्षण मौन रहने के बाद बोले—'रामलाल के मरने से पहले मैंने उसे वचन दिया था कि उसके घर को मैं सँभालूँगा

···परसों ही तो यह बात हुई, फिर जाने क्या हुआ कि रामलाल रात में सोया तो सदा के लिए सो गया···शायद अपनी मौत का एहसास उसे पहले ही हो गया था।'

मैं चुपचाप सुनता रहा।

'बेटे, तुम पर बड़ा भरोसा रहा है उसे···एक गहरा विश्वास। मुझसे अक्सर कहता था कि शायद रज्जू भी इतना नहीं कर पाता जो सब यह लड़का कर रहा है हमारे लिए।'

'मामा जी, मैं इसे अपना फ़र्ज समझता हूँ और यही समझकर सब किये जा रहा हूँ सुधा दीदी न होती तो शायद मेरा भी कोई अस्तित्व न होता।'

'अरे बेटा, आज की इस खुदग़रज़ दुनियाँ में फ़र्ज़ क्या है ? आज इन्सान का एक ही मकसद रह गया है, जैसे भी हो अपना घर भर लो। मगर जब सुधा और तुम्हें देखता हूँ तो बड़ी राहत मिलती है। इंसानियत कहीं-कहीं जिंदा दिखायी पड़ती है।'

'मामा जी, यह तो निहायत ही सच है। ईमानदार रहने के लिए आज के दौर में इंसान को इतने कुछ से हाथ धोना पड़ता है कि उसका हौसला···उसका विश्वास सब डगमगा जाते हैं···सच तो यह है कि ईमानदार होने के लिए सब की निगाहों में बेईमान होना पड़ता है।'

'हाँ बेटे, वास्तव में यह बहुत बड़ा सच है···खैर, मुझे तुमसे कुछ बहुत ज़रूरी बातें करनी हैं। इसीलिए तुम्हें बुलाया था।'

'वीनू भी कुछ ऐसा ही कह रही थी।'

'बेटे, सुधा के जी में जाने क्या है, हम तो समझ नहीं पाये।'

'मामा जी, सुधा दीदी अपने आपको मरीज़ों में खपा देना चाहती हैं, मैं नहीं समझता वह अपना नज़रिया बदलेंगी।'

'मगर बेटा, ऐसे कब तक चलेगा···'

'जब तक सुधा दीदी हैं···और फिर उनकी आप फ़िक्र न ही करें तो बेहतर है।'

'मगर वीना और नीरा··· ।'

'हाँ मामा जी, यह सोचने की बात है, क्योंकि दोनों इस लायक़

हो गयी हैं कि उनके विवाह कर दिये जायें।'

'यही तो मैं कहना चाहता था···क्या सुधा ने इस बारे में तुमसे बात की है ?'

'हाँ···बहुत बार।'

'फिर कुछ सोचा होगा तुम लोगों ने।'

'हाँ मामा जी···मेरे साथ मेरा एक दोस्त आया है न अनिल, उसका छोटा भाई है कनाडा में। उसका अपना कुछ कारोबार है। लड़का भी बहुत शरीफ़ है। चार पाँच महीने में आने वाला है। मैंने अनिल से बात की थी। उसका कहना है, विनोद उसकी बात टालेगा नहीं। मैं जानता हूँ दोनों भाइयों में कितना प्यार है। मेरे विचार में बीनू के साथ उसकी जोड़ी बहुत जँचेगी···तब तक नीरू के लिए भी लड़का तलाश लेंगे।

'अच्छी बात बेटे···, अब सब तुम्हें ही तो करना है। जाओ, कुछ देर आराम कर लो।'

मैं धीमे-धीमे चल कर नीचे आ गया था, हर तरफ़ लोग बिखरे बैठ बतिया रहे थे।

मैं गलियारे से बाहर निकलना ही चाहता था कि किसी ने मुझे बाजू से लपक लिया—

'कहाँ जा रहे हैं भैया, दीदी को कुछ खिला देते। आपका कहा तो टालेंगी नहीं।' वीनू की आँखें नम हो आयी थीं। मुझे याद आया, सुधा दीदी ने तो सुबह एक प्याला चाय ही पिया होगा ! तब से भूखी होंगी।

'वीनू, तुम दीदी को ले आओ और नीरू को भी भेज दो।'

'भैया, नीरू को मैं खिला दूँगी आप दीदी को खिला दें।'

'क्या बात है अनु ?' तभी सुधा दीदी आ गयीं।

'दीदी, आप थोड़ा-बहुत खा लेतीं।'

'नहीं अनु, तुम खाने की बात करते हो, यहाँ तो कुछ भी करने को मन नहीं।'

'मगर दीदी, ऐसा कैसे चलेगा ? सुबह से आपने कुछ भी तो नहीं

खाया ।'

'तुमने क्या खाया जो मुझे कह रहे हो···और वह अनिल कहाँ है ?'

'मिश्रा के यहाँ गया है । मेरी चिन्ता न करें । मैं अनिल के साथ कुछ खा लूँगा । आप प्लीज़, थोड़ा-बहुत कुछ तो ले लीजिए ।'

'अच्छी बात, तुम भी वादा करो खा लोगे ।'

'वादा रहा ।'

बेमन से थोड़ा-बहुत खाकर दीदी उठ गयीं···मैं कार लेकर मिश्रा के यहाँ चल दिया ।

मिश्रा और अनिल बाहर बरामदे में ही खड़े थे ।

'क्या हाल है मिश्रा जी ?' मैंने मिश्रा का हाथ थामते हुए पूछा ।

'सुधा जी के पापा के बारे में सुना तो सकते में आ गया आनन्द, ये सब कैसे हो गया ?'

'मालूम नहीं मिश्रा···भाभी कहाँ हैं ?'

'किचन में खाना बना रही है, जाओ मिल लो ।'

भाभी गैस के चूल्हे के सामने खड़ी थी दीवार से सटी हुई ।

'किस सोच में डूबी हैं भाभी जी ?' मैं भाभी के पैरों में झुकता हुआ बोला ।

'अरे-अरे, क्या करते हैं अनु भैया, क्यों पाप चढ़ा रहे हैं ?'

'क्या कह रही हो भाभी !'

'भैया, सुधा जी कैसी हैं ?'

'क्या पूछती हो भाभी उनका हाल, बस ठीक हैं यही कह सकता हूँ ।'

'भैया चाय पियेंगे क्या ? इलायची वाली ।'

'नहीं भाभी, मन अच्छा नहीं है । खाना बन जाय तो कुछ खा लूँगा··· ।'

मैं वापस बरामदे की तरफ़ आ गया । अनिल और मिश्रा ड्राइंग रूम में बैठे सिगरेट फूँक रहे थे ।

'मिश्रा तलत का वह टेप कहाँ है जिसमें देवदास के गाने हैं ?'

'उधर अलमारी में पड़ा है।'

मैंने अलमारी से वह टेप निकाल कर टेप रिकार्डर में डाल दिया। हल्का-हल्का उदास जादुई संगीत बिखरने लगा, तलत गा रहा था···

'जहाँ बजती है शहनाई वहाँ मातम भी होते हैं···'

फिर तलत गुनगुना रहा था···'तेरी आँख के आँसू पी जाऊँ···।'

और वही नज़्म जिंदा हो उठी जो बरसों से झकझोरती रही है मुझे···।

'किसको खबर थी किसको पता था।
ऐसे भी दिन आएँगे,
जीना भी मुश्किल होगा,
और मरने भी न पाएँगे।'

नज़्म खत्म हो गयी, साथ ही खत्म हो गयी कैसेट···। मिश्रा ने एक कश, जो शायद सिगरेट का आखिरी कश था, पूरे ज़ोर से खींचा, पलभर धुआँ मुंह में रखा और तब धुएँ के गोल-गोल छल्ले निकलने लगे जिनका आकार फैलता, दायरे टूट जाते और धुआँ कहीं ग़ायब हो जाता···।

'चलिए, खाना टेबल पर लगा दिया है।' भाभी आ गयी थीं।

कतर-कतर कर एक ही फुल्का मैं खा सका···ऐसा लगता था वह भी गले में अटक गया है अभी बाहर निकलेगा···खाना छोड़कर मैं वाश 'बेसिन' की तरफ़ बढ़ गया। सच में ही जो खाया था उलट दिया··· पेट में ऐंठन हो रही थी ! भाभी गुनगुने पानी में नमक डालकर ले आयी थी। कुल्ला करके ड्राइंग रूम में दीवान पर लेट गया, कुछ हल्का महसूस हो रहा था।

नींबू-पानी बना लायीं भाभी, बस वही नींबू-पानी पी सका मैं ! अनिल और मिश्रा भी आ गये थे।

'आप लोग तो खा लीजिए।' मैंने कहा।

'जितनी इच्छा थी हम लोग खा चुके।'

'चलो बाहर लॉन में बैठेंगे।' मिश्रा ने कहा।

'नहीं, मैं थोड़ा लेटूँगा, पेट में कुछ दर्द महसूस हो रहा है। तुम

लोग कुछ टहल आते ।'

जानता हूँ, मिश्रा खाना खाने के बाद सैर के लिए ज़रूर जाता है ।

'बहुत दर्द है क्या ?' अनिल बोला ।

'नहीं अनिल, शायद खाली पेट रहने की वजह से है···तुम लोग जाओ ।'

मिश्रा अनिल के साथ बाहर निकल गया ।

रह गये भाभी और मैं ।

'कुछ खाएँगे ?'

'भाभी, मन इतना खराब है कि सब कुछ जाने कैसा लग रहा है, मगर फिर भूख को कुछ न कुछ चाहिए···जो है कुछ खा लेता हूँ ।'

थोड़ा-बहुत कुछ खा लिया ।

'भाभी हमसे मिलने को मन नहीं किया क्या कभी !'

'अरे भैया, क्या बताऊँ आपको, सब कुछ मालूम तो है ।' एक गहरी साँस छोड़ते हुये भाभी बोलीं ।

'हाँ भाभी, हर कोई इस कदर बिज़ी है कि कहीं आने-जाने का वक्त है ही नहीं किसी के पास ।'

'अनु भैया, आजकल क्या लिख रहे हैं ? हमें तो ज़माना हो गया आपसे कुछ सुने हुए ।'

'फिर कभी सुनाऊँगा भाभी, लिखता तो रहता ही हूँ कुछ न कुछ···।'

तब एक खामोशी छा गयी ।

'कैसे हो अनु ?' अनिल ने आते ही पूछा ।

'अब तो बेहतर हूँ । तुम यहीं रहो, मैं वापस जाऊँगा ।'

'अनु भैया, आप भी यहीं थोड़ा आराम कर लेते ।' भाभी ने कहा ।

'नहीं भाभी, मैं सुधा दीदी के साथ जिस लिए आया था उसका क्या होगा···वैसे भी वह दिलेर लड़की कितना टूट गयी है, मैं जानता हूँ । एक भी बूंद आँसू नहीं रोयी···रो लेती तो मन कुछ हल्का हो जाता मगर सारा ग़म भीतर जमा किये है !'

मैं बाहर आ गया। घर के मेन रोड पर आते ही ऐक्सीलेटर पर दबाव बढ़ गया···उससे भी तेज़ दौड़ रहे थे मेरे खयाल।

गली के बाहर कार खड़ी कर लॉक कर दी और कदम घसीटता हुआ घर तक पहुँचा। लोग जा चुके थे। सुधा दीदी, नीरू, वीनू, मामा जी, मामी जी बरामदे में बैठे थे।

'कहाँ चले गये थे अनु, तुम।' दीदी बोली।

'मिश्रा के घर तक गया था।'

'अनिल कहाँ है ?'

'वह रात में वहीं रहेगा।'

'आओ बैठो, कुछ खाया पिया कि नहीं ?'

'भाभी ने काफ़ी कुछ खिला दिया।'

'झूठ बोल रहे हो···।'

'जानती हैं दीदी, आपसे झूठ नहीं बोलता।'

'आओ बेटा, बैठो यहाँ इधर आ जाओ।' मामा जी गम्भीर आवाज़ में बोले।

रातभर हम लोग वहीं बैठे ऊँघते बतियाते रहे।

पाँचवें दिन मैं और अनिल वापस आ गये। दीदी वहीं रह गयीं।

लगभग एक महीने बाद दीदी लौटीं।

सब कुछ एक बार फिर इसी अन्दाज़ में शुरू हो गया था। सुधा दीदी ने वीनू और नीरू के ब्याह कर दिये। उसके बाद तो उन्होंने हद ही कर दी···हर वक्त मरीज़ और उनमें उलझीं सुधा दीदी। डॉ० पाल, अनिल और मैं स्वयं' सब बेहद चिन्तित हो उठे थे सुधा दीदी की खामोशी से !

एक रात मैं नाईट ड्यूटी पर था। डॉ० पाल आये मेरे पास और बोले, 'आनन्द बेटे, यह सुधा को क्या हो गया है ? उसका चेहरा कितना पीला पड़ गया है···हर वक्त थकी-थकी-सी नज़र आने लगी है।'

'सर, मैं क्या बताऊँ, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता···क्या करूँ···!' मेरी आँखें नम हो आयीं।

'बेटे, तुम्हें हर हाल में सुधा को इस खामोश आग से निकालना है, उसे, इस कदर खुदकुशी नहीं करने देनी है, अभी बहुत कुछ करना है, सुधा को···।'

'सर, मैं···कोशिश करूँगा।'

डॉ० पाल चले गये और छोड़ गये एक आग की नदी जिसमें तड़प रहा था मैं ! यों भी सुधा दीदी को लेकर मैं बहुत परेशान था मगर अब तो···किसी को भी घुल-घुल कर जीते जी मरता देखकर मैं परेशान हो उठा था।

'सर, कॉफ़ी लेंगे क्या ?' सिस्टर मुझसे पूछ रही थी।

'क्या बात है सर, बड़े परेशान लग रहे हैं। तबियत तो ठीक है न ?'

'मैं···मुझे कुछ नहीं हुआ, जल्दी से कॉफ़ी ले आओ, कोई एनालजेनिक टेबलेट दे दो···थोड़ा सर में दर्द है।'

बड़ी बेचैनी से गुज़री वह रात। मैंने फैसला कर लिया सुबह ही दीदी से बात करूँगा।

नाईट ड्यूटी के बाद जब मैं अपने फ्लैट पर पहुँचा तो सुधा दीदी लगभग तैयार थी जाने के लिए।

'दीदी, आप छुट्टी की एप्लीकेशन लिख दीजिए मैं दे आता हूँ।'

'क्यों···क्या हुआ ?'

'कुछ है···तभी तो कह रहा हूँ।'

'बताओ तो !'

'मैंने कहा न एप्लीकेशन लिख दीजिए।' मेरी आवाज़ में खीझ थी।

'अनु···!' दीदी काँप-सी गयीं···शायद पहली बार मेरी ऐसी आवाज़ सुनकर।

अपने पर्स से पैन निकाल कर उन्होंने एप्लीकेशन लिख दी। जब मैं ऐप्लीकेशन देकर लौटा तो देखा सुधा दीदी चाय बना रही हैं। ब्रश करके मैं बरामदे में आकर बैठ गया। सुधा दीदी चाय ले आयीं।

'क्या बात है···बताओगे नहीं अनु।'

'सुनो दीदी···अगर आपको पता चले कि मैं मर गया हूँ तो आपको कैसा···।'

'क्या बक रहा है अनु···!' सुधा दीदी ने चाय का प्याला फर्श पर दे मारा···।

'दीदी, मैं सही पूछ रहा हूँ आपसे···।'

'यह सुबह-सुबह क्या हो गया है अनु, तुझे ?' दीदी की आवाज़ भर्रा गयी, आँखें छलछलाने लगीं। चाय का प्याला मैंने टेबल पर रख दिया और देखता रहा दीदी को रोते हुए···। एकमात्र यही हथियार बचा था मेरे पास कि रिश्ते को ताक पर रखकर एक्स्प्लायर करता··· वही किया और सफलता हाथ लगी···खामोशी का बाँध इस विस्फोट से छिन्न-भिन्न हो गया···।

'ऐसा क्यों कहा तूने अनु···यह तूने क्या कह दिया···' मैं खामोश रोता देखता रहा सुधा दीदी को।

'अनु, तू मेरा है तो लगता है कि मैं जिंदा हूँ···अनाथ नहीं हूँ। लेकिन यह तुझे क्या अनु···यह तूने क्या कह दिया···।'

बहुत रो लेने के बाद सुधा दीदी सँभली। मैं इस बीच चाय बना चुका था।

'दीदी, अभी कुछ पल पहले जो घटा, उसे सपना समझकर भूल जाओ और चाय पियो।'

'कैसे भूल जाऊँ अनु···।'

'वैसे ही···जैसे आपको सारे अतीत को भुलाना है!'

वह चुप···मेरी ओर देखती रही। मैं फिर बोला—

'दीदी, अतीत एक आग के सिवाय कुछ भी नहीं···दिल और अक्ल का एक मिला-जुला षड्यन्त्र है जो 'आज' के मुंह पर भी स्याही पोत देता है। अतीत में भटकने पर आज को कत्ल करना पड़ता है और हम कातिल बन जाते हैं···खतरनाक मुजरिम।' क्षण भर रुककर मैंने कहा—'दीदी, मैं आपको इस रूप में हरगिज नहीं देख सकता··· तभी तो···आज मुझे इस कठोर तरीके का सहारा लेना पड़ा, आप क्या समझती हैं हम इतने बेवकूफ़ हैं कि आपकी इस साज़िश को समझ

नहीं पा रहे कि किस तरह आप खुदकुशी पर आमादा हैं···?' आप एक डॉ० हैं···सिर्फ़ एक डॉक्टर, अपने भीतर की सुधा को आपने मार डाला है। डॉक्टर की ज़िन्दगी अपनी नहीं होती, उसे मरीज़ों के लिए हर हालत में जिन्दा रहना होता है···और आपको भी रहना है।'

'ओह अनु···' बस इतना ही कह पायी दीदी।

कुछ क्षण शान्त रहकर वह धीरे-धीरे कहने लगीं—

'अनु, अब तक बहुत सहा है मैंने, अब और नहीं सह पाऊँगी···तुम कहीं बींच में न छोड़ जाना।'

'जहाँ तक मेरी बात है, अगर मुझे आपका साथ न निभाना होता तो आपका दामन ही न थामता। मुझ पर विश्वास रखो दीदी!'

'तुम पर विश्वास न होता अनु, तो तुम्हारे पास ही क्यों आती।'

'तो आओ दीदी, इस अतीत को कहीं दफ़ना दें···और सिर्फ़ आज के लिए जिएँ।'

तब से लेकर आज तक सुधा दीदी के चेहरे में भारी बदलाव आया है। आँखों से नूर टपकता है।

'कहाँ खोये हो डॉ० आनन्द?' मेरी सोचों की लड़ियाँ टूट चुकी थीं···आँखें खुलीं, दिन का उजाला भरा हुआ था कमरे में। कारीडोर में लोगों की भीड़ थी।

'बहुत गहराई से सोचते हो आनन्द।' डॉ० चौधरी बैठते हुए बोले—'नाईट तो सही सलामत गुज़री न!'

'अरे कहाँ यार, वह इडियट गंजा अभी शिकायत लेकर आयेगा।'

'कौन···डॉ० नारंग?'

'हाँ, वही···।'

'वात क्या हुई थी ?'

मैंने सारी बात वता दी और पूछा—

'तुम होते तो क्या करते चौधरी ?'

'मैंने तो पहले उस गंजे को ही लिटा दिया होता खून देने को। खैर···तुम फ़िक्र मत करो, जाओ आराम करो।'

मैं वुझा-सा दिल लिये अपने घर की ओर चल पड़ा। घर पहुँच कर देखा, दीदी बेसुध सो रही थीं। चाय पीने की तलब हो रही थी। चाय बनाकर दीदी के कमरे में गया तो देखा वह जाग रही हैं। मैंने चाय का प्याला उनके हाथ में थमा दिया।

'थैंक्यू अनु।'

'दीदी, सवि को क्या तकलीफ़ है ?'

'अनु···' सुधा दीदी के हाथों में चाय का प्याला काँप गया—

'शी इज़ हैविंग कार्सीनोम ब्रेस्ट।'

'इस उम्र में ?'

'हाँ अनु, सवि की साँस कब उखड़ जाय मालूम नहीं। उसका आप्रेशन नहीं हो सकता···पांच दिन से बेचारी बैठी हुई है, डैकाड्रान और डैरीफ़ाइलिन हर चार घण्टे में देना पड़ता है। पता नहीं सोयी भी है कि नहीं।'

अभी हम लोग ये वातें कर ही रहे थे कि शरद आया। औरों को ज़िन्दगी देने वाले शरद का चेहरा इतना वेरौनक होगा, मैंने कभी सोचा भी न था।

'शी इज़ नो मोर···भैया···!' इतना कहकर वह मेरे सीने से लग गया···मैं उसे थपकने लगा। सुधा दीदी का चेहरा एकदम पीला पड़ गया।

मैं यह भी सह गया। मैंने सवि को पहले कभी नहीं देखा, जब देखा तब वह देखने लायक न थी।

शरद जा चुका था।

मैं दिनभर वेचैन रहा। आखिर तंग आकर सुधा दीदी के वार्ड

की तरफ़ निकल गया।

'आओ अनु, इस वक्त कैसे ?'

'दीदी, मन इतना उदास है कि कुछ समझ नहीं आ रहा।'

सामने डॉ० पाल चले आ रहे थे।

'कहो वरखुरदार, कैसे हो ?'

'सब आपकी दुआ है, सर।'

'क्यों भई, डॉ० नारंग से क्या बात हो गयी, बड़ी ज़बरदस्त शिकायत कर रहा था तुम्हारी मैडिकल सुपरिंटेंडेंट से।'

'होने को तो कोई बात नहीं सर, और सोचें तो है भी बहुत बड़ी बात। सुधा दीदी रात को वहीं थीं जब यह बात हुई। वह 'विटनेस' हैं।'

'देखो बेटे, जो कुछ तुम हो, जो तुम कर रहे हो, करना चाहते हो, मैं उस सब का बहुत बड़ा प्रशंसक हूँ। तुम्हारा बुजुर्ग होने के नाते मेरा यह फ़र्ज़ है कि मैं तुम्हें हर खतरे से अलर्ट करूँ। तुम्हें थोड़ा टैक्टफुल होना पड़ेगा बेटे, हर जगह आजकल पालिटिक्स है। तुम तो हो ही ऐसी जगह जहाँ एक-एक कदम फूँक कर रखना पड़ता है। इस तरह हर किसी से झगड़ना अच्छा नहीं···। मैं जानता हूँ, तुमने कोई ग़लती नहीं की होगी। फिर भी इल्ज़ाम तुम्हारे सर आय···तो कुछ तुम्हारा भी कसूर है। पलभर के लिए वह कड़वा घूंट तुम्हें पी लेना चाहिए था···। क्यों सुधा, ग़लत कह रहा हूँ क्या ?'

'अंकल, यहीं तो भैया मार खा जाते हैं। श्रीमान जी हर-किसी को अपना-सा ईमानदार और शरीफ़ समझे हुए हैं। हर किसी पर विश्वास कर लेना ही आज बहुत महंगा पड़ता है।'

मैं खामोश खड़ा रहा।

सुधा बिटिया, इसे सम्हाल कर रखना। बहुत कीमती है यह, इसे अभी बहुत कुछ करना है।'

'आप चिन्ता न करें अंकल, अनु को मैं सम्हाल कर रखूँगी। इससे बढ़कर मेरे लिए इस दुनिया में है ही क्या ? अनु ने बहुत सहा है मेरे लिए, मैं इसे किसी कीमत पर टूटने नहीं दूँगी।' फिर वह लहजा

बदल कर बोलीं—'अंकल आप ध्यान रखिएगा, डॉ० नारंग कोई और घिनौनी चाल न चले। बहुत घटिया किस्म का आदमी है।'

इसके बाद सुधा दीदी और डॉ० पाल राउन्ड लेने चले गये। लौटने पर दीदी ने कहा—

'अनु, छुट्टी की एप्लीकेशन लिख दो।'

मैंने लिख दी।

फिर हम ब्लड बैंक की ओर आ गये। वहाँ ज़ोरदार बहस चल रही थी। डॉ० चौधरी और डॉ० जैन मेरी तरफ़दारी कर रहे थे जबकि बाकी सब मेरे विरोध में थे।

'अनु, तुम यहीं ठहरो, मैं एप्लीकेशन देकर आती हूँ।'

और एकाएक सुधा दीदी दरवाज़ा खोलकर भीतर चली गयीं। उन्हें देखते ही और शायद सब चौंके थे।

'डॉ० सुधा, आप ?' यह डॉ० गुप्ता थे।

'अनु की ऐप्लीकेशन देने आयी हूँ। वह दिमाग़ी तौर पर बहुत परेशान है। चार पाँच दिन नहीं आ पायेगा।'

'परेशानी तो होगी ही जी, सबसे झगड़े करेंगे तो परेशानी नहीं तो और क्या होगा।' डॉ० गुप्ता कह रहे थे।

'जानते हैं डॉ० गुप्ता मैं रात को यहीं थी जब यह वारदात हुई। अनु का कसूर इतना ही है कि उसने ईमानदार रहने की कोशिश की। खून डॉ० नारंग को भेज दिया गया था उतने ही वक्त में जितना आमतौर पर लगता है। हाँ, अनु के ईमानदार होने की कोशिश में यह सब हो गया और जो धमकी वह देकर गया…एक आदमी जो खुद ग़लती पर है वह कह जाये कि मैं देख लूँगा तुम्हें और आप भी उसी की तरफ़दारी कर रहे हैं ? लानत है ऐसे डिपार्टमैंट पर ! अगर किसी ने कोई शरारत की तो मैं भी देखूँगी उसे ! यह ऐप्लीकेशन है अनु की !'

दीदी काग़ज़ मेज़ पर रखकर बाहर आ गयीं, चेहरा गुस्से में तमतमा रहा था।

'चलो अनु, मैं देखूँगी कैसे कुछ करते हैं ये लोग !' और मुझे

घसीटते हुए ले गयीं। घर पहुँच कर लगा कि बहुत थक गया हूँ।

'दीदी···दी···दी···, यह सब क्या हो रहा है·· ?' मेरी आवाज़ नहीं निकल रही थी।

'छि···अनु, इसमें चिन्ता की क्या बात है···? कितने भावुक हो तुम। जानते हो कितने लोगों का गहरा विश्वास है तुम में ! उन सब का विश्वास इस कदर झुठलाओगे ? हमें हालात से डरना नहीं, हालात के सामने झुकना नहीं है। हालात को चुनौती देनी है, हालात से लड़ना है।'

मैंने अपने आप को सम्भाला···मगर जिस्म टूट रहा था।

'मुंह धो लो अनु जी, चाय तैयार है।'

मैं मुंह धोकर चुपचाप चाय पीने लगा।

'अनु, हर चीज़ को इतनी गहराई से मत सोचा करो। इस धूप-छाँव की ज़िन्दगी में तो जाने क्या-क्या होता रहता है ?'

'दीदी, कैसी हो गयी है यह दुनिया, सब लोग कैसे हो गये हैं। न कुछ करते हैं न करने देते हैं। ईमानदार बने रहना कितना मुश्किल हो गया है ?'

'सो तो ठीक है अनु, मगर इन सब बातों को लेकर अपनी हैसियत मिटा देना कहाँ की अक्लमंदी है ?'

'तो आदमी क्या करे सुधा दीदी, हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे ! तब तो उस शायर की बात कितनी सही होगी जिसने कहा है—

साहिल के तमाशाई हर डूबने वाले का
अफ़सोस तो करते हैं इम्दाद नहीं करते।'

'मेरा मतलब यह नहीं था। मैं तो चाहती हूँ इम्दाद करो, मगर साथ-साथ अपने को भी बचाकर रखो ताकि फिर किसी की इम्दाद कर सको। यह तो न हो कि किसी की इम्दाद करते-करते खुद को डुबो दो। तुम्हीं तो ये पंक्तियाँ गुनगुनाते रहते हो—

माना कि इस जहान को गुलशन न कर सके
कुछ काँटे कम ही कर गये निकले जिधर से हम।

सारा रास्ता हम साफ़ नहीं कर सकते, कुछ काँटे ही चुन सकते हैं। मगर ऐसा न हो कि उन्हें चुनने के चक्कर में हम पहले ही मोड़ पर

लहूलुहान हो जाएँ।'

'बहुत सही कहा आपने दीदी, जाने कभी-कभी मैं बहुत भावुक क्यों हो जाता हूँ…।'

'इन्सान को इमोशनल भी होना चाहिए ज़रूर, पर सिर्फ इमोशनल नहीं, सिर्फ प्रैक्टिकल भी नहीं क्योंकि कोरा प्रैक्टिकल आदमी बहुत मतलबी हो जाता है।'

'तो…?'

'इमोशनल कब होना है, प्रैक्टिकल कब इसका सोचना बहुत ज़रूरी है आदमी के लिए। भावुकता इन्सान को उसके भीतर की उस गहराई तक ले जाती है जहाँ इन्सान की रूह होती है जो फ़ैसले देती है और यहीं से इन्सान की व्यावहारिकता शुरू होती है। यही गहराई फ़ैसले सुनाती है, रूह को जगाती है और रूहानी दृष्टि से लिया गया कोई भी फ़ैसला ग़लत नहीं होता। जब कोई फ़ैसला ग़लत नहीं होता तो इन्सान कैसे ग़लत हो सकता है?'

'वाह दीदी…क्या बात कही है आपने!'

'मैंने कुछ नहीं कहा, जो है तुम्हारा कहा हुआ है। मैंने तुम्हारे सामने दोहरा दिया है जैसे एक दिन तुमने मुझसे कहा था।'

'हाँ दीदी, दूसरों को कह लेना कितना आसान है जब अपने पर पड़ती है तभी मालूम होता है।'

'अनु, बहुत हो गया…छोड़ो यह सब। चलो, कहीं घूमने चलते हैं।'

'कहाँ चलेंगी?'

'लेक पर चलें…अरे हाँ, आज पूर्णिमा है, चाँद पूरा होगा, जब पहाड़ियों के पीछे से निकलेगा तो कित्ता अच्छा लगेगा।'

'ठीक है, कुछ खाने को साथ ही लिये चलते हैं।'

लेक पर काफ़ी भीड़ थी। खुशनुमा मौसम, शहर की भीड़ भाड़ से परे। कभी-कभी यह सब बहुत भला लगता है।

खाना खा लेने के बाद हम सीढ़ियों पर आकर बैठ गये। चाँद धीरे-धीरे पहाड़ियों के पीछे से उभर रहा था। पहाड़ियाँ चांदनी में नहा गयी थीं। चाँदनी में झील का पानी ऐसे लग रहा था जैसे कोई

चांदी की नदी हो। खामोशी ने वातावरण को और भी अजीब-सा वना दिया था। तभी कहीं से बांसुरी की आवाज़ आने लगी। झील में लहरें एक अनजान सफ़र की ओर बह रही थीं। गुलाब और रात की रानी के फूलों की महक चारों तरफ़ फैल रही थी। और इस सब पर, दर्द में डूबी कशिशभरी बांसुरी की धुन···ऐसा लगा, इत्र-सा घुल गया है हवाओं में।

'अनु, कौन इतनी दर्दनाक धुन बजा रहा है। कौन अभागा है जो कुदरत के इस नूर को न पीकर अपने में ही डूबा हुआ है ?'

'दीदी, यह खान ही होगा।'

'खान · कौन ?'

'कौन है, कहाँ रहता है यह तो मैं भी नहीं जानता, बस कभी-कभार जब यहाँ आता हूँ तो मिलता है। कोई टूटा हुआ इन्सान है, शायर है, बाँसुरी बजाता है। गीत गाता है···चलो चलते हैं वहाँ···।'

हम टहलते-टहलते वहाँ पहुँच गये। सामने खान बैठा था, कांधों तक झूलते लम्बे-लम्बे बाल, उलझी-सी दाढ़ी, गले में मालाएँ, चेहरे पर अनोखा नूर, खान इन्सान नहीं लग रहा था, ऐसे लगता था कि संगीत इन्सान का रूप लेकर धरती पर ज़िंदगी पा गया हो। ऐसी मस्ती, ऐसी बेफ़िक्री···।

हम खामोश बैठे रहे।

धुन खत्म हुई, संगीत का जादू रुक-सा गया, रह गया हल्का-हल्का-सा इक नशा !

'आदाब मियाँ डाक्टर, आदाब बहन ! कहो डॉक्टर, कैसे हो ?'

'खैरियत से हूँ खान भाई, ये हमारी बड़ी बहन हैं डॉ० सुधा।'

'बहुत खूब मियाँ, तो दोनों बहन-भाई डाक्टर हो। अरे डाक्टर, कभी हमारा भी इलाज कर दो।'

'क्या इलाज करें खान भाई, कुछ अता-पता बताएँ तो बात बने।'

'हमारी समझ से बाहर है मियां डाक्टर···

वो खयाली है खयालात समझने वाला
मुझसे बेहतर मेरे हालात समझने वाला।'

खान गुनगुनाता रहा, बेहद सुरीली आवाज, दर्द का दरिया-सा वहने लगा था···कुछ ऐसी धुन छेड़ी थी खान ने ! सारा वातावरण ठिठक-सा गया। मानो हर चीज खान को टुकुर-टुकुर देखने लगी। ऐसा लगा जो जहाँ हैं वहीं मथ गया है ! उफ़ ! इतना जादू सुरों का···

'कहाँ खोए हो डॉ० मियाँ !' खान मुझसे पूछ रहा था।

'खान भाई, यह क्या जादुई जाल फैलाया था तुमने, मैं तो उसी की पकड़ में···'

'अब चलें मियाँ डॉक्टर, फिर मिलेंगे कभी, आदाब डॉ० वहन, आदाब डॉ० मियाँ।'

खान जा चुका था।

'वड़ा अजीव आदमी है···'दीदी बोली।

'हां दीदी, बड़ा वेपरवाह है। शायर ठहरा, क्या ग़ज़ब की बाँसुरी वजाता है। लोगो ने बहुत ऑफ़र किया है इसे प्रोग्राम देने को, मगर कहता है मुझे दौलत और शोहरत का ज़हर नहीं पीना है।'

'अनु, ज़रा अपने को इस स्थिति से कम्पेयर करो।'

'नहीं···नहीं···कभी नहीं, यह कम्पेरीजन ही तो जड़ है तमाम दुःखों की।'

'तुम हर वात को इतना गहरा क्यों सोचते हो, क्या मिलता है तुम्हें ऐसा करके ?'

'वही गहराई दीदी, जो फैसले कराती है, जिसकी वदौलत अभी तलक मेरी साँसें चल रही हैं।'

हम लौट पड़े, तमाम रास्ता खामोश रहे···

हम चल रहे थे साथ-साथ
मगर थे वहुत दूर-दूर
खयालों की वादियों में डूबे हुए।

घर पहुँचे, कपड़े बदल कर मैं अपने कमरे में चला गया। सामने रैक में ढेरों मोटी-मोटी किताबें पड़ी थीं। टेवल पर फाइलों का ढेर था। अभी बैठना ही चाहता था कि फ़ोन की घंटी सुनाई पड़ी—

'अनु तेरा फोन···।'

'हैलो।'

'कहिए सुपुत्र आनन्द, मज़े में हो।'

'कहो उमेश, क्या हाल हैं ?'

'पुत्र, जो प्रश्न हमने किया पहले उसका उत्तर दो।'

'हाँ पिताजी, आपका सुपुत्र मजे में है, अब कहिए क्या कष्ट है आपको ?'

'आनन्द बाबू, गुस्सा मत हो, क्रोध स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।'

'अब कुछ बकेगा भी कि नहीं···।'

'डॉ॰ आनन्द, घड़ी पहने हो क्या ?'

'हाँ···।'

'ज़रा देखकर बताओ, समय क्या है ?'

'ग्यारह बजने वाले हैं···मगर तू बोर क्यों कर रहा है ?'

'देहली के लिए गाड़ी कितने बजे चलती है ?'

'सवा बारह।'

'आनन्द बेटे, जल्दी यह ट्रेन पकड़ो और देहली पहुँचो।'

'क्यों···सब कुशल तो है न।'

'तुमसे कहा न जल्दी पहुँचो, तुम्हें एक तोहफ़ा देना चाहता हूँ।'

'ऐसा क्या अलादीन का चिराग़ है तुम्हारे पास ?'

'है मियाँ, है ! तुम आओ तो सही।'

'अगर मैं कहूँ···मैं नहीं आ सकता···।'

'तो भाड़ में जाओ, जब पता लगे उमेश जी चल बसे हैं तो आ जाना।'

'उमेश, क्या बकवास···।'

मगर फ़ोन तो कट चुका था।

उफ! कितना ज़िद्दी है उमेश जो कहेगा, मनवा कर ही छोड़ेगा।

'क्या हुआ अनु ?' दीदी सामने खड़ी थी।

'दीदी, यह उमेश···पता नहीं क्या चाहता है···।'

'चले भी जाओ, कुछ चेंज हो जायेगा। यहाँ के घुटनभरे वाता-

-वरण से कुछ क्षण तो मुक्ति पा जाओगे।'

'ठीक है···चला ही जाता हूं नहीं तो उमेश नाराज हो जायेगा।'

और मैं ब्रीफ़केस में कपड़े रखने लगा।

ट्रेन में बर्थ मिल गयी थी। अपनी बांह सिर के नीचे टिकाकर सोने के लिए आँखें मूँद ली, मगर नींद तो रूठी हुई है मुझसे। आती भी कहाँ से। मैं जितना नींद के करीब जाने की कोशिश करता, वह उतनी ही दूर चली जाती···।

यादें बेतरह चिपट गयी थीं मुझसे। ये यादें कितनी बेरहम होती हैं। आदमी सर पटक-पटक कर बे-जान हो जाये मगर यादें पीछा नहीं छोड़तीं। तब गूँज गये दिमाग़ में साहिर दा के ये शब्द···'हमारा दिमाग़ एक कब्रिस्तान की तरह है जिसमें यादों की कब्रें होती हैं··· यादें इन कब्रों में पड़ी रहती हैं। जब कभी एकान्त होता है, यादें कब्रों से बाहर निकल आती हैं।'

सारा अतीत लहरा गया मेरे सामने, बचपन से लेकर आज तलक कितने लोग ज़िन्दगी में आये—चले गये···कुछ साथ रह गये हैं जैसे सुधा दीदी, अनिल, उमेश, मिश्रा, भाभी आदि। इन लोगों को भुला पाना असंभव है।

इनमें से एक है उमेश। एक ऐसा आदमी कि जो देखे तो बस देखता रह जाये। मजाल है उमेश की मौजूदगी में कोई उदास हो जायें। हँसा-हँसा कर पागल कर देता है उमेश सबको···इसी उमेश से मेरा पहला परिचय यूनिवर्सिटी के आडीटोरियम में हुआ था। बरसों पहले का वह धुंधला चित्र सामने उजागर हो उठा। उस दिन स्टेज मैंने संभाली हुई थी। उमेश को गोल्ड मैडल मिला था उस रोज़। उसकी तकरीर में दम था, बड़े आला दर्जे की बातें कही थीं उमेश ने। मुझे भी अपनी कविता पर गोल्ड मैडल मिला था।

'बहुत-बहुत मुबारक आनन्द भाई, क्या जादू किया कि यूनिवर्सिटी के इन उद्दंड लड़के-लड़कियों को बाँधकर रख दिया।'

'शुक्रिया ! आपको भी बहुत-बहुत मुबारक। क्या जान फूँकी शब्दों में आपने। ज़बान को ज़िंदगी देना भी किसी-किसी के बस में होता है।'

'आओ आनन्द भाई, एक-एक प्याला कॉफ़ी हो जाए इस ख़ुशी के मौके पर।'

'चलिए।'

कैफेटेरिया खचाखच भरा हुआ था, कॉफ़ी की महक छायी हुई थी हाल में।

'वह सामने टेबल खाली है, वहीं बैठते हैं।' उमेश बोला।

लौटते समय रास्ते भर उमेश बतियाता रहा और मैं खामोश सुनता रहा था।

'आनन्द भाई, हमारी जोड़ी जमेगी खूब। मैं बकवास करता रहूँगा तुम सुनते रहोगे। क्या खयाल है आनन्द ?'

उमेश का हाथ बढ़ा हुआ था, मैंने भी उस बढ़े हुए हाथ को थाम लिया था।

'तुम्हारी दोस्ती का गवाह रहूँगा मैं।' मिश्रा अचानक जाने कहाँ से आ टपका था।

'अरे मिश्रा, तुम यहाँ कैसे ?'

'ऐसा कैसे हो सकता है अनु, कि तुम्हारा प्रोग्राम हो और मिश्रा जी उसमें शरीक न हों।'

हँसी फूट पड़ी सब की।

'ये हैं मिश्रा जी मेरे सबसे प्यारे दोस्त !' मैंने मिश्रा जी का परिचय कराया उमेश से।

'अनु, तुम्हें डॉक्टरी नहीं पढ़नी चाहिए थी, तुम्हें तो बस कलाकार ही रहना चाहिए था।'

'मिश्रा, शायद ऐसा हो भी जाता अगर मेरे उस्ताद ने मुझे रोका नहीं होता।'

'वह कैसे ?'

मेरे उस्ताद ने सख्त ताकीद की थी कि इसे प्रोफ़ेशन नहीं बनाऊँ और उस्ताद का हुक्म नकारने की मुझमें हिम्मत नहीं थी।'

'उमेश जी, आप भी बतायें अपने बारे में कुछ…।'

'आनन्द, क्या बताऊँ अपने बारे में…एम० ए० कर रहा हूँ…लिट्रेचर को दीवानगी की हद तक चाहता हूँ। इतनी बड़ी दुनिया में अकेला हूँ, घर पर कोई है नहीं ? एक माँ थी वह भी बड़े-बड़े सपने देख कर चल वसी…। पापा की तो शक्ल भी याद नहीं…बस, और क्या बताऊँ ?'

'ओ…। वैरी सारी उमेश, मेरा इरादा तुम्हें दुःखी करने का कतई नहीं था, मुझे अफ़सोस है मेरी वजह से तुम्हारे घाव हरे हो गये।'

'अजी, खेद की क्या बात है हुजूर ! आप कौन-सा कुछ मुझसे छीन लिये जा रहे हैं, आप तो वहुत कुछ दिये जा रहे हैं मुझे।'

'हाँ उमेश, हम तुमसे दूर सही…रहेंगे तुम्हारे दिल में, जब ज़रूरत हो वे-धड़क चले आना।'

यही थी हमारी पहली मुलाकात। बरसों बीत गये। उमेश उपाध्याय डी० लिट० की उपाधि पाकर यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर हो गये, हम इधर रिसर्च में चले आये…।

पिछले कई वरसों में उमेश एक ही बार मिला था मुझसे, वह मुलाकात बहुत दुःखदायी रही।

कुछ क्षण पहले ही मैं हास्पिटल से लौटा था। चाय पी रहा था, दीदी भीतर बैठी कुछ पढ़ रही थीं।

गेट खुलने की आवाज़ से चौंककर मैंने देखा, सामने उमेश खड़ा था।

'अरे उमेश…कैसे हो ?'

उमेश आते ही मुझसे लिपट गया था।

'तुम सुनाओ आनन्द, क्या हो रहा है कभी याद भी नहीं किया हमें।'

'क्या कहते हो उमेश, तुम्हें भूल सकता हूँ क्या ?'

'कौन है अनु…?' भीतर से सुधा दीदी की आवाज़ आयी।

'अरे दीदी देखो तो, अपना उमेश आया है।'

'नमस्कार दीदी।'

'नमस्कार, कहो उमेश, कैसे हो ?'

'जैसा हूं, आपके सामने हूँ।'

'आप लोग बैठो, मैं चाय बनाती हूँ अनु, तुम और लोगे क्या ?'

'हाँ दीदी, वह चाय तो अभी मैंने छुई भी नहीं, ठंडी पड़ गयी है।'

'अच्छा-अच्छा बैठो, बातें करो, मैं अभी आयी।'

'उमेश, तुम्हारा चेहरा बता रहा है कि तुम बहुत परेशान हो।'

'हाँ अनु, चाय पी लें तब बतलाऊँगा, नहीं तो चाय का मज़ा भी जाता रहेगा। तुम कहते थे न दीदी चाय बहुत बढ़िया बनाती है।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।'

तभी दीदी चाय ले आयी। हम तीनों चाय पीने लगे।

चाय पी लेने के बाद उमेश बोला—

'अनु पिछले कुछ दिनों मैं बीमार रहा हूँ। डॉक्टर लोग तो मुझसे भी ज़्यादा परेशान रहे हैं। सभी जानते हैं न, हर समय दबोचे रहते थे, कभी यह टैस्ट तो कभी वह। शायद वे लोग मुझसे बहुत कुछ छिपाना चाहते थे, मगर मैं एक दोस्त की मदद से अपनी फाइल के डुप्लीकेट पेपर तैयार कराकर लाया हूँ—लो देखो !' और उसने ब्रीफ़केस से एक फाइल निकालकर मेरे सामने रख दी।

फाइल के पन्ने उलटते-पलटते मेरा दिल बैठता चला गया।

'दीदी, आप यह फाइल देखिए मैं अभी आया।'

मैं उठकर अन्दर चला गया। छलछलाई आंखों को पानी के छींटों से साफ़ करने की कोशिश की। बाहर आया तो उमेश दीदी से पूछ रहा था 'तो यह सब सही है…?'

'मुझसे तो ज़्यादा अनु जानता होगा, उसका फ़ील्ड यही है।'

मैं भी आकर बैठ गया।

'क्यों अनु, यह सब सच है न ?' उमेश ने पूछा।

'उमेश, अभी हम किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सकते।'

'रहने दो अनु, इन बातों को, हकीकत को नकारते क्यों हो ! जो

है सो तो है ही, उससे क्या डर ! खैर छोड़ो, मैं और कुछ नहीं जानना चाहता। जो जानना चाहता था, जान चुका…।'

दूसरी सुबह मैंने नये सिरे से टैस्ट किये, मगर हकीकतें थोड़े ही बदला करती हैं।

'अनु, तुम घबराओ नहीं, मैं उसी तरह जिऊँगा जैसे अब तक जीता रहा हूँ। इसे एक राज़ समझकर अपने भीतर दफ़न कर दो।'

तब से कभी उदास नहीं देखा उमेश को। जब भी मिला, कहकहे लगाता हुआ। अपनी असलियत छिपाकर जी रहा है उमेश। आखिर ऐसी क्या बात है जो फ़ोन पर न बताकर मुझे देहली बुलाना चाहता है !

गाड़ी झटके से रुक गयी थी। बाहर अँधेरे की हल्की-हल्की चादर लहरा रही थी। कब इतना सफ़र तय कर गया, मालूम ही नहीं पड़ा।

स्टेशन पर उस समय भी बहुत भीड़ थी। उस भीड़ को चीरता हुआ मैं स्टेशन से बाहर आ गया और टैक्सी लेकर चल दिया उमेश के घर की तरफ़। स्ट्रीट लाइटें बुझ चुकी थीं…शायद छः बज रहे थे। नयी सुबह जन्म ले रही थी, सड़कों पर अच्छा भला ट्रैफ़िक था। इसी भीड़-भाड़ की वजह से देहली मुझे कभी रास नहीं आयी। सुबह-सवेरे से ही वातावरण धुएँ से ढका हुआ था।

'माडल टाऊन आ गया बाऊ जी, किहड़ी थाँ जाणा ए ?'

'ओ सामने दूसरी गली में।'

'बस सरदार जी, ऐथे ही रोक दिओ, किन्ने, किन्ने पैसे हो गए ?'

'अट्ठ रुपए सट्ठ पैसे जी।'

टैक्सी का बिल देकर मैं उमेश की कोठी के सामने आ गया। 'कॉल बैल' का बटन दबाया, घंटी बजी…दरवाजा खुला। एक बहुत ही खूबसूरत अप्सरा-सी लड़की सामने खड़ी थी। मैंने सोचा, शायद ग़लत जगह आ गया हूँ।

'किससे मिलना है ?' एक सुरीली आवाज़ कानों में शहद-सा घोल गयी।

'सॉरी मैडम, शायद मैं ग़लत ज़गह आ गया हूं। ऐच-74 कहाँ होगा ?'

'एच-74 तो यही है, मिलना किससे है आपको ?'

'मिस्टर उमेश से···यहीं तो रहते थे वह···?'

'अब भी यहीं रहते हैं···।' सुन्दरता की वह मूर्ति मुस्करायी—'सैर को गये हैं, अभी आते होंगे। आप अन्दर तशरीफ़ रखिए।'

मैं भीतर चला गया।

'आपका परिचय···?' एक हल्की-सी सुरसराहट कमरे में तैर गयी···।

'जी आनन्द कहते हैं मुझे।'

'आप···आप डॉ० आनन्द हैं हमारे···अनु भैया···।' सुरसराहट चहक में बदल गयी।

'जी···मैं ही···।' मेरी आवाज़ विस्मय की गहराइयों में डूब-सी गयी।

'सॉरी भैया, पहले कभी आपको देखा नहीं न···! उमेश तो हर वक्त आपकी और सुधा दीदी की बातें किया करता है।' वह मेरे कदमों में झुकने को हुई···।

'अरे-रे, क्या कर रही हैं आप ?'

'आपका आशीर्वाद चाहिए···भैया !'

फिर बोली—

'अच्छा भैया, आप हाथ-मुँह धोकर फ्रेश हो लीजिए, तब तक मैं चाय बनाती हूँ। कल उमेश कह तो रहा था कि आनन्द आयेगा मगर उसे भी शायद यह उम्मीद नहीं थी कि आप इत्ती जल्दी पहुँच जाएँगे।'

'अरे···अनु, तू कब आ गया···?' उमेश की आवाज़ ने मुझे चौंका दिया। हम दोनों लपककर एक-दूसरे से लिपट गये।

'रुचि, चाय लाओ भई, डॉ० साहब थक गये होंगे।'

रुचि जी चाय बनाने में लगी हुई थीं।

'अनु, यह है तुम्हारी भाभी रुचि, यही तोहफ़ा मैं दिखाना चाहता

था तुम्हें, कहो कैसा लगा…?'

'वैरी…वैरी स्वीट…बहुत-बहुत अच्छा।'

एक बार फिर से नमस्कारों का आदान-प्रदान हुआ। उस जीते-जागते सौन्दर्य का झुका हुआ चेहरा देखता ही रह गया मैं।

'क्या बात है डॉ० आनन्द, रुचि को किडनैप करने का इरादा है क्या? कैसे घूर-घूर कर देख रहा है, लड़की नहीं देखी क्या पहले कभी…?'

'क्या बक रहे हो उमेश…?' और मेरे भाभी के मुँह से एक साथ निकला।

'वैरी गुड!'

ताली बजाकर उमेश खिलखिलाया। मेरे चेहरे का रंग शायद उड़ रहा था जबकि भाभी का चेहरा शर्म से लाल हो गया था।

'अनु, रुचि है ही ऐसी चीज़ जिसे उड़ा ले जाने को कोई भी दिल मचल सकता है, मगर तुम्हारा बुढ़ऊ संन्यासी दिल इस तरह सोच भी नहीं सकता…' आई एम सरटेन एबाऊट इट!'

'मैं ज़रा नहा लूँ उमेश…' मैं वहाँ से उठ जाना चाहता था।

'अभी-अभी तो चाय पी है।' रुचि भाभी बोली।

'कोई फ़र्क नहीं पड़ता, भाभी।'

मैं बाथरूम में चला गया।

शॉवर के नीचे नहाने का अपना ही मजा है। बहुत देर तक नहाता रहा मैं। सफ़र की थकान उतर गयी।

'क्या सारा दिन नहाते ही रहोगे डॉ०!' उमेश की झल्लाहट-भरी आवाज़ सुनायी दी।

बाथरूम से बाहर आया तो देखा, दिन फैल चुका था। सामने लॉन में उमेश बैठा पेपर पढ़ रहा था।

'कोई विशेष समाचार है, उमेश?'

'यस अनु, बड़ा महत्त्वपूर्ण रहस्योद्घाटन हुआ है।'

'क्या…?'

'डॉ० उमेश उपाध्याय सुपुत्र लाला हरदयाल उपाध्याय का विवाह

रचना भसीन से यहाँ के आर्य समाज में सादगी से सम्पन्न हुआ। नवविवाहित दम्पत्ति को ढेरों शुभ कामनाएँ···!'

मेरी हँसी न रूक पायी। उसमें एक और हँसी शामिल हो गयी रूचि भाभी की।

'लो, कमाल है। इसमें इतना हँसने की क्या बात है? इतनी बड़ी दुर्घटना घट गयी, समाचार-पत्र इसे न छापते यह, कैसे हो सकता है!'

मैं वेतहाशा हँसे जा रहा था।

'दैट्स गुड, अनु!'

'क्या?'

'तुम्हें हमेशा इसी तरह हँसते देखना चाहता हूँ। मगर जानता हूँ, तुम तो बरसों बाद कभी मुस्कराते होगे···।'

हँसते-हँसते मेरे पेट में दर्द होने लगा था। एक तो उमेश बातें ऐसी करता है कि बस हँसे बिना रहा नहीं जाता और उस पर ऐसी-ऐसी मुद्राएं बनाता है कि पत्थर के बुत भी हँस पड़ें।

'वैसे बाई दि वे अनु, पिछली बार तुम सन् 72 में हँसे थे, जहाँ तक मुझे याद है···बीच में शायद ही कभी तुम हँसे हो, मुझे यक़ीन नहीं।'

एक बार फिर मेरा ठहाका फूट पड़ा।

'प्लीज़ उमेश, बस करो, अब और नहीं हँसा जाता।'

'अरे, डॉ० प्यारे, हँस ले, फिर जाने उमेश कभी मिले कि न मिले।'

मेरी हँसी को जैसे ब्रेक लग गयी और जो गहरी सांस उमेश ने ली थी, लगा मेरा दिल फूँकती हुई निकली···वह हँसी का दौर··· वह तूफ़ान जो कुछ पल पहले था···सब ग़ायब हो चुका था।

'यह क्या, फिर सीरियस हो गये?'

'नहीं तो···।'

'उमेश, तुम लोग गप्प लड़ाओ? मैं ब्रेकफ़ास्ट तैयार करती हूँ!'

रुचि भाभी उठकर चली गई। रह गया उमेश और मैं। मेरी आँखें अभी तक नमी से आँख-मिचौली खेल रही थीं।

'सॉरी अनु, मेरी वजह से तुम्हें दुःख हुआ।'

'ओ नो उमेश, यह बात नहीं···दीदी सही कहती हैं···मैं बहुत इमोशनल हूँ।'

'अच्छा अनु, एक बात बताओ, रुचि कैसी लगी तुम्हें ?'

'बहुत···बहुत अच्छी।'

'बस···?' हाथ नचाता उमेश बोला—'सब सत्यानाश कर दिया तूने। अबे, तू शायरी करता है कि घास खोदता है। तूने तो सारा मूड चौपट कर दिया··। अरे इतना लाजवाब हुस्न तेरे सामने था, इतना घूर-घूरकर तू देख रहा था फिर भी तेरे भीतर वह बेवकूफ़ शायर खामोश रहा ? तू यह सब कहीं से चुराकर तो नहीं लिखता ?'

मेरे बंद होंठ एक बार फिर खिल-से गये। मेरी हल्की-सी हँसी अचानक खिलखिलाहट की आवाज़ में डूब गयी। यह रुचि भाभी थीं जो पीछे ही खड़ी थीं।

'चलिए अनु भैया, नाश्ता कर लीजिए। उमेश के साथ बैठे रहे तो भूखे ही रहोगे सारा दिन।'

'चलो यार अनु, भूख बहुत तेज़ हो गयी है।'

नाश्ता के लिए टेबल पर आकर बैठे तो उमेश बोला—

'अनु, यहाँ किसी की मातमपुर्सी के लिए आये हो क्या ?'

'क्या बक रहे हो तुम ?'

'ज़रा आइने में शक्ल तो देखो, ऐसे ही लगता है।'

'यार कुछ कहने से पहले सोच तो लिया करो···!'

'अनु, तू जानता है ऐसी बातें कभी मेरे गले नहीं उतरतीं। यह बेवक्त का मातम, हर वक्त उदासी, छिः छिः ! उमेश को शर्म से मर जाना चाहिए।'

'तो तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ···नाचूँ···गाऊँ ?' मैं खीझ पड़ा।

'गुस्सा नहीं डॉक्टर ! गुस्सा स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। आपको तो वैसे भी गुस्सा नहीं करना चाहिए, ब्लड प्रेशर बढ़ जायेगा डॉ० आनन्द !'

'उमेश, किसी को पसन्द हो न हो तुम हर वक्त अपनी बाँचते

रहा करो। नाश्ता तो चैन से करने दिया होता।' रुचि ने उमेश को डाँटा।

'बहुत खूब ! नादान पति का साथ छोड़ देवर जी की तरफ़दारी कर रही हैं ? क्या कलियुग आ गया है !' उमेश ने मुद्रा ही ऐसी बना रखी थी कि मैं हँसे बिना रह नहीं सका।

'यह हुई न कुछ बात। शाबाश बेटे ! लो, नाश्ता करो।'

'चाय लोगे न और ?' नाश्ते के बाद उमेश ने पूछा।

'ना…!'

'तुम्हारे मुँह से चाय के लिए नांह सुनकर बड़ा अजीब लग रहा है। तुम वही अनु हो न जो एक के बाद एक चाय के पाँच-पाँच प्याले पी जाता था ?'

'यस उमेश, बिल्कुल वहीं हूँ।'

'तो फिर…?'

'यह सब सुधा दीदी का असर है। शुरू-शुरू में जब वह मेरे फ्लैट में रहने लगी थीं तब तो चाय को तरस जाता था मैं। जब भी चाय के लिए कहो तो बड़े प्यार से डाँट देती थीं, कहतीं—क्या रखा है इस काली-कलूटी चाय में ? दूध पियो, तुम पढ़ने वाले बच्चे हो, तुम्हें तो चाय पीनी ही नहीं चाहिए। जानते हो चाय कितनी खुश्की पैदा करती है। मैं ज़िद करता तब कहीं जाकर चाय मिलती, वह भी जानते हो कैसी ? प्याला भरा हुआ, दूध उसमें दो तीन चम्मच चाय का उबला पानी ! जो न पीते बनता और न छोड़ते। बस, धीरे-धीरे चाय की आदत जाती रही।'

'भई वाह ! कमाल कर दिया दीदी ने तो, वैसे क्या हाल हैं दीदी के ?'

'अच्छी हैं।'

'वैसे ही जी रही हैं।'

'वैसे कैसे ?'

'वही…दिन रात मरीज़ों में उलझी रहती हैं क्या ?'

'हाँ उमेश, सुधा दीदी ने अपनी छोटी-सी ज़िन्दगी में इतना खोया

है, अब और कुछ खोना नहीं चाहतीं, न ही और कुछ खो देने की हिम्मत रह गयी है उनमें।'

'अनु, तुम बहुत भाग्यशाली हो, सुधा जैसी दीदी का स्नेह तुम्हें प्राप्त है।'

'बे···शक !'

'आओ अनु, उधर लॉन में बैठेंगे।'

'भाभी को भी बुला लें ?'

'नहीं, उसे रहने दो। मुझे तुमसे कुछ बहुत जरूरी बातें करनी हैं।'

उमेश का बग़ीचा काफी अच्छा है। बहुत मेहनत करता है अपने बग़ीचे पर वह। गुलाब की कई किस्में हैं, हरी-हरी मखमली दूब का एक कालीन-सा बिछा हुआ है सारे बग़ीचे में। टहलने का अनोखा ही मज़ा मिलता है वहाँ। फूलों की खुशबू से महकता वातावरण नर्म दूब पर मोतियों सी चमकती ओस की बूँदें, ओस से नहाई पत्तियाँ और फूल···ऐसा महसूस होता है कल्पना से भी परे की कोई चीज़ हो। इधर एक कोने में बोगनविलिया, बीच में अंगूरों की बेल, इस कोने में पीले गुलाबों की एक बेल-सी, छत पर चढ़ी हुई बेलें वंदनवार मालूम होती हैं। सामने कुछ विशेष प्रकार के जंगली जाति के फूल, छोटे-छोटे गमलों में रंग-बिरंगे पौधे··· । लॉन के बीचों-बीच एक सूर्यमुखी के फूल का पौधा, कुल मिला कर एक बहुत सुन्दर कल्पना ! देहली में ऐसा वातावरण पाकर लगता है आदमी स्वर्ग में आ गया हो।

इसी लॉन के एक कोने में आम का पेड़ है। जब उस पर बौर आता है तो उसके नीचे बैठ कर स्वर्ग का आनन्द महसूस होता हैं। इसी पेड़ की छाया में उमेश और मैं बैठे थे आमने-सामने !

'यह बैठे-बैठे कहाँ खो जाते हो, अनु ?'

'उमेश, मैं इस लॉन के भविष्य के बारे में सोच रहा था।'

'लॉन के बारे में सोच रहे हो, लॉन के मालिक के बारे में नहीं?'

'मालिक के बारे में तो बहुत सोचा है, उमेश।'

'कोई और बात करो, अनु।'

'जैसे···।'

'जैसे···तुम्हारे दोस्त ने शादी कर ली, तुम्हें बताया तक नहीं··· वग़ैरह···!'

'उमेश, मैंने तुमसे पहले भी कहा था हमारे बीच कभी कोई प्रश्न चिह्न नहीं होगा। मैं जानता हूँ कोई ऐसी मजबूरी रही होगी कि तुम मुझे सूचना तक नहीं दे सके।'

'मुझे मालूम था अनु, तुम्हारा यही जवाब होगा कैसे आदमी हो तुम। तुम्हारे उस दोस्त ने शादी कर ली जिस पर तुम्हारा पूरा अधिकार था, तुम्हें इन्फार्म तक नहीं किया। तुम हो कि तुम्हें गुस्सा भी नहीं आया। काश, तुम मुझे डाँटते···अनु!' उमेश की आँखें नम हो आयी थीं।

'देखो उमेश, जब हमने एक दूसरे का हाथ थामा था तभी यह फैसला किया था कि हम अपने बीच प्रश्न चिह्नों की कोई खाई पैदा नहीं होने देंगे।'

'मगर अनु, यह कोई मामूली बात नहीं थी···।' उसकी आँखों में घुमड़ती घटाएँ देखकर मैं बोला—

'तो इसमें रोने की क्या बात है?'

'अनु, तुम तो हर चीज़ भीतर ही भीतर पी जाते हो। कितना बड़ा मन है तुम्हारा? हर कोई ऐसा नहीं हो सकता।' शेष शब्द उमेश की सिसकियों में कहीं दब गये थे।

मुझे स्वयं पर बड़ा क्रोध आ रहा था। इतना जानने के बाद भी उमेश को कुछ कह लेता तो मेरा क्या चला जाता? रुचि भाभी की प्रशंसा कर देता तो मेरा क्या बिगड़ जाता! जी में आया कि खुद को नोच डालूँ। ऐसी थोथी आदर्शवादिता, ऐसे उसूल किस काम के जो किसी के मन को पीड़ा पहुँचाएँ। बोला—

'उमेश, मुझे खेद है कि मेरी वजह से तुम्हें पीड़ा पहुँची।'

'ओ नो अनु, इसमें तुम्हारा क्या कसूर है मेरे लिए क्या यही कम है कि तुम मेरे एक बार कहने पर चले आये हो।'

'नहीं उमेश, मुझे खुद से बड़ी नफ़रत महसूस हो रही है।'

'अनु क्या वकवास कर रहे हो, तुम पूछते न पूछते, मुझे तो सब बताना था तुम्हें, तुमसे थोड़े ही कुछ छिपाकर रख सकता हूँ !'

'मैं खुद भी सुनना चाहता हूँ कि आखिर सब कुछ जानते-समझते हुए भी ऐसा क्यों किया तूने ?'

'अनु, मैं परिस्थितयों के हाथों कुछ इस कदर उलझ गया था कि कोई चारा नहीं था इसके सिवाय मेरे पास ।' वह गला साफ़ करते हुए बोला, 'सुनो, पूरी बात सुनाता हूँ···।'

पल भर रुककर उसने कहना शुरू किया—

'बरसभर पहले की बात है, मैं डिपार्टमैंट से लौटा तो नौकर ने मुझे बताया कि कोई लड़की मुझसे मिलने आयी थी और एक पत्र दे गयी है। पत्र पढ़ कर मालूम हुआ कि आने वाली मेरे मित्र की रिश्तेदार है। यहाँ कोई इण्टरव्यू देने आयी है डी०ए०वी० स्कूल में और सिफारिश के लिए लिखा था उसने !'

'मैं ड्राइंग रूम में बैठा कुछ पेपर देख रहा था कि नौकर ने आकर बताया सुबह वाली लड़की आई है !

'आने वाली लड़की बहुत ही खूबसूरत थी।'

'आइये रचना जी, मैं आप ही का इन्तज़ार कर रहा था, कैसा रहा आपका इण्टरव्यू ?

'इण्टरव्यू तो अच्छा रहा मगर उम्मीद नहीं···।'

'क्यों···?'

'जानते हैं उमेश जी, आजकल बिना सिफ़ारिश कुछ होता नहीं।'

'अरे तो क्या है, हम आपकी सिफ़ारिश कर देंगे ! एक बात बताइए, कोई मिस्टर महाजन थे इण्टरव्यू लेने वालों में, चश्मे वाले, छोटे-से।'

'हाँ थे तो···मिस्टर कुलदीप महाजन।'

'तब तो समझिये, आपका काम बन गया। मैं अभी कुलदीप से बात करता हूँ।'

फ़ोन पर कुलदीप मिल गया। जब मैंने रचना जी के बारे में बात की तो उसने कहा, 'उनके लिए सिफ़ारिश की ज़रूरत ही नहीं। हम

इन्टरव्यू वालों का ही इण्टरव्यू ले लिया उन्होंने । उन्हें कल ही नियुक्ति-पत्र मिल जायेगा ।'

'आपका काम तो हो गया रचना जी, अब मुँह कब मीठा करा रही हैं ?'

'जब भी आप कहें ।'

'तो ऐसा कीजिए, फिलहाल तो चाय बनाकर ही पिला दीजिए ।'

'यही थी हमारी मित्रता की शुरूआत ! जब रुचि को यहाँ नौकरी मिल गयी तब मेरी ही कोठी में रहने लगी वह ।'

'अनु, रचना मेरी ज़िन्दगी में समाती चली गयी । तुम तो जानते हो, बहुत लड़कियाँ मेरी ज़िन्दगी में आयीं, मैं सबसे हँसता मुस्कराता जोक सुनाता और छोड़ता रहा । मगर रुचि को पाकर ऐसा लगा कि वह समय आ गया है जो इन्सान की ज़िन्दगी में सिर्फ़ एक बार आता है ।'

'रुचि भी जिन्दगी के हाथों सतायी हुई थी, मुझसे विश्वास पा लिया था उसने, एक निष्कपट और निश्छल विश्वास, एक पवित्र विश्वास ऐसा ही विश्वास मैंने रुचि से पाया था । जब इन्सान किसी से विश्वास पा लेता है तो उसके व्यक्तित्व में एक निखार आ जाता है । हम दोनों एक दूजे की पवित्रता पूजते रहे । यह सब कुछ इस कदर अनजाने में हो गया कि हमें भी खबर तक नहीं हुई । रुचि हरदम आँखों के सामने रहती, फूलों के गीत गाती, तन्हाई की ग़ज़ले गाती और अश्कों के नग़में बुनती···और जब कभी ओझिल होती तो पीछे छोड़ जाती एक नशा, एक महक जिसमें मैं खोया रहता !

'जब इन्सान को प्यार मिलता है तो वह उसके सामने हर हकीकत झुठला देना चाहता है । वैसा ही हुआ, मैं अपनी असलियत अपने भीतर छिपाये रहा स्वार्थवश कि कहीं रुचि को खो न दूँ ! मेरे दिलो दिमाग़ पर रुचि छायी हुई थी । रुचि से जब तक घंटों बातें न कर लेता, चैन न मिलता, लगता जैसे दिनचर्या का कोई महत्त्वपूर्ण पहलू रह गया है । और जब कुछ मन चाहा मिल जाता है तब समय को भी पंख लग जाते हैं···।

'कभी जब यह विचार मेरे मन में उभरता कि जब बिना रुचि के

रहना पड़ेगा तब ? मैं हमेशा इस प्रश्न का गला घोटता रहा, भविष्य की कल्पना कर आज के पल का सुख गँवाने का साहस मेरे भीतर नहीं था।

इधर बीच-बीच में रुचि विवाह का प्रश्न उठाती और ज़िद पकड़ती, मैं जैसे-तैसे उसे टाल जाता। जानता था जब इन्सान सुख के बाद अचानक दुःख का सामना करता है तो दुःख बहुत गहरा लगता है मेरा विवेक मुझे झिझोड़ता तो लगता बहुत अन्याय किया है रुचि के साथ मैंने, अपनी क्षणिक खुशी के लिए किसी की ज़िन्दगी झोंक दी है उसमें।

'रुचि को कैसे भूल पाऊँगा, रुचि मुझे कैसे भुला पायेगी ? इस समस्या को सुलझाने की मैं जितनी चेष्टा कर रहा था उतना ही उलझता चला जा रहा था। मेरी हालत उस रेशम के कीड़े जैसी हो रही थी जो अपने इर्द-गिर्द जाल बुन लेता है और फिर खुद उसमें फँस कर रह जाता है। मैं उन दिनों तुम से सलाह करने आया था, मगर तुम्हारी हालत देखकर साहस न बन पड़ा कि तुमसे कोई बात कर पाता। हर समय दूसरों को चुटकुले-मजाक सुनाबे वाला उमेश खुद एक मज़ाक बनकर रह गया।

इधर रुचि के पास ब्याह के सिवाय जैसे कोई और बात ही नहीं थी। वह अपनी जगह सही थी। लोग हमें लेकर तरह-तरह की बातें बनाने लगे थे, वे सिर-पैर की उड़ाने लगे थे। मुझे तो क्या होता, रुचि बहुत महसूस कर रही थी ।

मैं भीतर ही भीतर टूट रहा था और उधर रुचि दिन पर दिन परेशान होती जा रही थी।

अक्तूबर के दिनों में सुबहें बड़ी खुशनुमा होती हैं अनु, हल्की-हल्की ठंडक हवा में घुली होती है जो तन-बदन को रोमांचित कर जाती है। एक ऐसी ही सुबह थी, हल्का-सा अँधेरा अभी भी वातावरण पर लहरा रहा था, लॉन की हरी नर्म मखमली दूब पर मैं नंगे पाँव टहल रहा था। ओस के कणों का स्पर्श शरीर से आत्मा तक गहरा उतरता जा रहा था। फूलों की खुशबू से हवा महकी हुई थी, सुबह गुनगुना

रही थी। ऐसा लगता था मानो किसी दुल्हन के खूबसूरत चेहरे से घूँघट उठाया जा रहा हो··· ।'

अचानक रुचि को सामने देखकर मेरे विचारों का तार टूटा—

'तुम इतनी सुबह कैसे उठ गयीं ?'

'उमेश···' बस इतना ही कह पायी वह—

'क्या काम है रुचि, तुम्हारा चेहरा बता रहा है कि तुम रात भर सोई नहीं हो।'

'हां उमेश, मैं रात भर जागती रही हूँ और एक ही बात सोचती रही हूँ कि मैं क्या करूँ, और अब फ़ैसला करने आयी हूँ। तुम्हें सिर्फ़ हाँ या ना में जवाब देना है सिर्फ़···हाँ या ना।'

मैं कांप-सा गया। लगा, आज वह विस्फोट होने वाला है जिसे मैं बहुत दिन से टालता आ रहा था। क्या करता अनु, कुछ समझ नहीं आ रहा था। लगता था, प्राणहीन हो गया हूँ, मस्तिष्क सुन्न हो गया है सोचने-विचारने की शक्ति नहीं रही थी मुझमें।

'उमेश, मैं तुम्हारे बिना अब एक पल भी नहीं रह सकती। कहो, क्या कहते हो तुम ?'

'एक तीर-सा मेरे आर-पार हो गया। अनु, मुझे लगा, अभी चकरा कर गिर पड़ूँगा ! मुझे लगा मैं डूब रहा हूँ !'

'उमेश, क्या तुम मुझसे प्यार नहीं करते ?'

'रुचि, तुम्हारे बिना किसी क्षण की कल्पना से लगता है मैं मर गया हूं तो तुम्हारे बिना जी भी कैसे सकता हूं !'

'उमेश तुम कहते हो न सच्चा प्यार एक दृढ़ता प्रदान करता है मगर मैं महसूस कर रही हूँ कि कमज़ोर कर रहा है हमें यह प्रेम।'

'मैं समझा नहीं···रुचि।'

'उमेश, निश्चय ही प्यार की मंज़िल विवाह नहीं होती—यह मैं समझती हूँ, मगर विवाह एक मजबूत नींव बन सकेगा प्रेम के इस मीनार का। इस विषय पर मैं जब भी बात शुरू करती हूँ तो लगता है तुम्हें गहरा दुःख पहुँचता है, कोई तकलीफ़ होती है ! मैं अब तक नहीं समझ पायी कि वह क्या दुराव-छिपाव है हमारे बीच में जो हमें इस कदर

परेशान करता है। यही कुछ है जो हमें कमज़ोर बना रहा है।'

'उमेश, तुम कितने कमज़ोर पड़ गये हो, तुम्हारा चेहरा इतना उतरा हुआ है कि लगता है युगों से बीमार हो, आखिर तुम सच्चाई बताते क्यों नहीं? अगर नहीं बताना चाहते तो मैं ज़ोर नहीं दूँगी। मैंने फ़ैसला लिया है, मैं यहाँ से चली जाऊँगी···मैं तुम्हें दुःखी नहीं देख सकती।'

'बस करो रुचि, 'मैं परेशान होकर भीगे स्वर में बोला और फिर धीरे-धीरे मैंने अपनी हकीकत रुचि के सामने खोल कर रख दी, उसका चेहरा संजीदा हो गया, आँखें डबडबाई दिखाई दीं···।

कुछ क्षण रुककर मैंने धीमे-से स्वर में पूछा—

'अब बताओ रुचि, मैं क्या करूँ···?'

'मुझे बहुत दुःख हुआ है यह जानकर उमेश कि तुमने मुझे समझा ही नहीं, रुचि टूट सकती है, अपने हाथों खुद को फूंक सकती है लेकिन उमेश, तुम्हारे बिना तो एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। बस इतनी-सी बात को लेकर तुमने इतनी सज़ा दी खुद को? काश, मुझसे एक बार तो पूछा होता···?'

'रुचि···रुचि, भावुकता में मत बहो। रुचि, जीवन-भर का प्रश्न है, दो चार दिन की बात तो है नहीं।'

'उमेश, तुम बार-बार यह जतला कर मेरा ही नहीं, मेरे प्यार का भी अपमान कर रहे हो। मैं बहुत सुन चुकी, अब और इस बारे में कुछ नहीं सुनूँगी।'

'रुचि···वैसे इस तरह जीने का खयाल बहुत खूबसूरत है मगर इस क्षणिक खूबसूरती में न बँधकर उस काले भविष्य को देखने की कोशिश करो जो इस खूबसूरती के पीछे छिपा है।'

'मैंने कहा न उमेश, मैं अपने पवित्र प्यार की और बेइज्ज़ती सहन नहीं करूँगी। अगर तुमने एक भी शब्द और कहा न, तो समझना रुचि के कातिल कहलाओगे···।' आवेश में उसका चेहरा लाल हो गया।

'मुझे चुप हो जाना पड़ा···और नतीजा आज तुम्हारे सामने है।'

'यह तो रुचि भाभी का बहुत बड़ा बलिदान है उमेश ।' मैं बड़-बड़ाया ।

कुछ देर तक हम दोनों खामोश बैठे रहे। मैं मन ही मन सोच रहा था, रुचि भाभी के शारीरिक सौन्दर्य से हजार गुणा उनका आत्मिक सौन्दर्य है। जब इन्सान तन-मन दोनों से सुन्दर होता तो सुन्दरता को वर्णित करना कठिन हो जाता है ।

'अनु, तुम रुचि के साथ गप्प लड़ाओ मैं ज़रा यूनिवर्सिटी होकर अभी आता हूँ ।' सहसा उमेश को जैसे कोई काम याद आ गया ।

रुचि भाभी मेरे सामने आ बैठी थीं । बड़ी-बड़ी बोलती हुई आँखें, मुस्कराहट लिये नर्म नाजुक होंठ, स्याह घनी केशराशि कमर को छूती हुई। चेहरा ताज़े गुलाब की तरह खिला हुआ। सचमुच उमेश ने सही कहा था मैं शायरी नहीं करता घास खोदता हूँ ।

एक शेर गूँज गया कल्पना में—

चिराग़ कह के मेरा नूर मुझसे छीन लिया
चिराग़ फिर भी रहूँगा बुझा-बुझा ही सही ।

'अनु भैया, कहाँ खो जाते हैं आप ?' रुचि भाभी ने मेरी तन्मयता तोड़ी ।

'भाभी, सच कहूँ तो आपके जादुई सौन्दर्य में खोया हुआ था ।'

'तो भैया, आप भी बनाने लगे । लज्जा की छाया तैर गयी रुचि भाभी के चेहरे पर ।'

'भाभी, आपने जो बलिदान किया है उसके सम्मुख नतमस्तक हो गया हूँ मैं ।'

'छोड़ो न भैया'''यह बताइये, दीदी कैसी हैं ?'

'वैसी ही जैसा होना चाहिए उन्हें ।'

'भैया, दीदी को देखा नहीं फिर भी लगता है कि बहुत प्यारी होंगी । ऐसे लगता है कि जैसे हरदम करीब रहती हों ।'

'भाभी, आज के इस युग में सुधा दीदी जैसा चरित्रमात्र किताबों में ही मिल सकता है। इसी तरह आपकी मिसाल भी बेमिसाल है ।'

'भैया, हम लोगों के रिश्ते खून के रिश्तों से कितने बेहतर हैं ?

कोई छल-कपट नहीं, कोई वैमनस्य नहीं। आपको और सुधा दीदी को देखकर कोई कह ही नहीं सकता कि आप सगे नहीं, उमेश और आप कौन कह सकता है सगे भाई नहीं।'

'भाभी, इस दुनियाँ में अपने ही अपने नहीं रहे, स्वार्थ ने सब कुछ छीन लिया है। हर रिश्ते की कीमत दौलत से आँकी जाने लगी है। दौलत ने खरीद लिया है सब कुछ।'

'भैया, कुछ और बात करो न···।'

मैं चुप सोचों में खोया रहा।

'भैया, शरबत तो पियेंगे ?'

हाँ···बना लो।' शायद मैंने प्रश्न पर ध्यान दिये बिना ही उत्तर दे दिया।

तभी उमेश भी डिपार्टमेंट से लौट आया।

'रुचि कहाँ है अनु ?'

'भीतर गयी हैं शरबत बनाने। उमेश क्या प्रोग्राम है तुम्हारा ?'

'अनु, सोच रहा था कुछ दिनों के लिए कहीं घूम आऊँ, पता नहीं कितनी ज़िन्दगी और बाकी है ?'

'उमेश···।' एक गहरी साँस लेकर रह गया मैं।

'कहाँ जाना चाहतो हो उमेश ?' मैंने पूछा।

'तुम्हीं बताओ अनु, कौन जगह अच्छी रहेगी ?'

'मुझसे क्या पूछ रहे हो। मुझे हनीमून का कोई अनुभव नहीं।' मैंने मुस्कराते हुए कहा।

एक कहकहा लगा। उमेश हँसते हुए बोला—

'ऐसा जवाब तुम दे पाओगे, मैं सोच भी नहीं सकता था। तुम तो आजन्म कुंवारे रहोगे ना।'

'हाँ, शायद तुम्हारी इस उम्मीद पर खरा उतरूँगा मैं।'

रुचि भाभी शरबत ले आयी थीं।

'उमेश, क्या तुम ऐसा नहीं कर सकते कि आज ही लौट चलें। दीदी से मिल लो, तब जहाँ जाना हो चले जाना।'

'क्या कह रहे हो अनु, आज तो तुम आये हो, आज ही वापस चलें।'

'नहीं, आज तो नहीं चलेंगे, अनु भैया।' रुचि भाभी मेरे पीछे आ खड़ी हुई थीं।

'उमेश, मैं जिस हालत में यहाँ आया हूँ, मैं ही जानता हूँ; जबकि मेरा इस वक्त वहाँ रहना बहुत ज़रूरी था। मेरे पीछे षड्यन्त्र रचा जा है। जाने क्या होने वाला है ? मैं समझ नहीं पा रहा हूँ।' मैं फिर परेशान हो उठा था।

'ऐसी बात है अनु, तो आज ही चलते हैं। तुमने फ़ोन पर क्यों नहीं बताया मुझे ?'

'तुमने मौका ही कहाँ दिया था।'

'रुचि, लंच तैयार कर लो। लंच करके हम लोग चल देंगे।'

'लंच कहीं रास्ते में कर लेंगे, उमेश। भाभी, आप तैयारी कीजिए।'

'अनु, चलो बाज़ार से कुछ ले आते हैं सुधा दीदी के लिए।'

'रहने दो यार।'

'जाइये न अनु भैया, दीदी के पास पहली बार जा रही हूँ। खाली हाथ जाते अच्छा नहीं लगेगा।'

मजबूर होकर मैं उमेश के साथ चल दिया। जाने वह क्या-क्या खरीदता रहा मार्केट से। मुझे तो कभी दिलचस्पी रही नहीं खरीददारी में, न ही मुझे कोई मार्केट का तजुर्बा है।

आते वक्त टैक्सी ले ली थी। हमने सोचा, कहाँ बस-गाड़ी का इंतज़ार करते रहेंगे।

रुचि भाभी एकदम तैयार थीं।

'यह क्या बना लिया है आपने भाभी ?' टिफ़िन को देखकर मैंने पूछा।

'जो बन पड़ा है बना लिया है, वहाँ रास्ते में क्या मिलता है।'

टैक्सी चल दी।

मैं रास्ताभर सोता रहा। शायद रात न सो पाने की वजह से ही ऐसा हुआ होगा, वर्ना सफ़र में मुझे नींद बहुत कम आती है। अपने शहर में पहुँचते ही लगा साँस में साँस आ गयी है। शाम के साये बढ़ चले थे।

सुधा दीदी बाहर बरामदे में बैठी हुई कुछ पढ़ रही थीं। मुझे देख कर हक्का-बक्का रह गयीं—

'अरे अनु, तू लौट आया ?'

'हाँ दीदी, देखो कौन-कौन आया है ?'

'कौन हैं…?'

'उमेश है, भाभी हैं साथ में।'

'भाभी किसकी, उमेश की…?'

'अरे नहीं, दीदी, हमारी भाभी, रुचि भाभी, अपने उमेश ने शादी कर ली है।'

'शादी…? उमेश ने…?' दीदी की आँखें आश्चर्य से फैल गयीं।

'ओ भाभी, इधर आओ भई, दीदी को यकीन नहीं आ रहा।'

रुचि भाभी को दीदी के सामने ला खड़ा किया मैंने।

'क्यों रे, तूने इतना भी जरूरी नहीं समझा कि हमें फ़ोन तक कर दे ?' रुचि भाभी को अपनी बाहों में समेटती हुई बोली दीदी।

'अनु ने तो यह पूछना जरूरी नहीं समझा कि मैंने शादी कब की ?' ढिठाई से हँसते हुए उमेश बोला।

'अनु को दुनियादारी से कोई मतलब नहीं उमेश, मगर तुम्हारी बड़ी बहन तो जिंदा थी, उसे भी बुलाना ज़रूरी नहीं समझा ?' बनावटी क्रोध से दीदी बोल रही थी।

'इसके लिए तो जो सज़ा दें मैं भुगतने को तैयार हूँ, मुर्ग़ा बन जाऊँ क्या ?' उमेश सचमुच मुर्ग़ा बन गया।

एक ठहका गूँज गया वातावरण में।

'स्टैण्ड अप उमेश, तुम्हारी सज़ा पूरी हुई।'

'दीदी, अब भीतर चलेंगी या पूरी क्लास यहीं लेंगी इस बेचारे की ?'

तभी अन्दर फ़ोन की घंटी बजी।

'हैलो कौन, चौधरी ?'

'हाँ !'

'हाँ, मैं आनन्द बोल रहा हूँ।' अभी-अभी लौटा हूँ, कोई खास बात है क्या ?'

'हाँ…'

'ओह…! अच्छा, मैं अभी आ रहा हूँ।'

'उमेश भई, मैं अभी आया। ज़रा ब्लड बैंक तक हो आऊँ।'

'क्या हुआ अनु ?' दीदी ने पूछा।

'मालूम नहीं दीदी, चौधरी बोल रहा था कि जल्दी आ जाओ ! जाऊँगा तो मालूम पड़ेगा।'

'मेरे वार्ड में भी बोलते आना कि मैं नहीं आ पाऊँगी। पाल अंकल मिलें तो लेते आना उन्हें।'

मैं चलते-चलते यही सोच रहा था कि ऐसा क्या हो गया है जो आते ही मेरी ज़रूरत पड़ गयी।

लम्बे-लम्बे कारीडोर सुनसान पड़े हुए थे। मेरी समझ में भी नहीं आ रहा था…।

ब्लड बैंक के बाहर लटका ट्यूबलाईट वाला बोर्ड जगमगा रहा था 'रक्त का उपहार दीजिये' पढ़कर आंखें फिर सोचने के अन्दाज़ में सिकुड़ गयीं।

दरवाज़ा खोलकर मैं भीतर चला गया। चौधरी मुझे देखते ही उठ खड़ा हुआ—

'हैलो आनन्द, कब आये देहली से ?'

'अभी आकर बैठा ही था कि तुम्हारा फ़ोन आया। क्या बात है ?'

'बैठो आनन्द।'

मैं बैठ गया।

'आनन्द, तुमसे पहले भी बहुत बार कहा है ईमानदारी की ज़रूरत आज के इस युग में नहीं है।'

'आखिर हुआ क्या है ?'

'आनन्द, जो कुछ ये लोग करने जा रहे हैं, समझ नहीं आता किसे नुकसान होने वाला है !'

'क्या कर रहे हैं ?'

'तुम्हारे खिलाफ़ डिस्प्लेनेरी एक्शन लेने जा रहे हैं। वात उड़ती-उड़ती मेरे कानों तक पहुँची है !'

'तुमसे किसने कहा ?'

'डॉक्टर जैन बता रहे थे। वड़े उत्तेजित थे। कह रहे थे कि अगर इन लोगों ने कुछ किया तो वहुत बुरा होगा।'

'चौधरी, यह सब कुछ सोच-समझ कर चलने का वक्त है। इस तरह उत्तेजित होकर हमें कोई मौका नहीं देना है उन्हें !'

'मगर आनन्द, ये सब तुम्हारे ही पीछे क्यों पड़े हैं ?'

'वात यह है चौधरी कि मैं जव यहाँ आया था तो मुझे कोई जानता नहीं था। मैंने मेहनत से अपनी जगह वनायी, फिर मैंने कोशिश की उन सपनों को साकार करने की जो मैं वचपन से देखता चला आया था। खून के अभाव में मैंने जव ज़िंदगियाँ मरते देखीं तो मैंने एक ख्वाव बुना था। मगर वह ख्वाव शेखचिल्ली का ख्वाव सावित हुआ। फिर भी मैं कुछ न कुछ करता रहा। बस यही कुछ करना ही खा गया मुझे, मैंने डिपार्टमैंट कालिज में बहुत दुश्मन पैदा कर लिये, नतीजा तुम्हारे सामने···।'

तभी चौधरी ने खामोश रहने का इशारा किया, कोई दरवाजे के पास खड़ा था। बिना आहट किये मैं उठा, एकाएक दरवाज़ा खोल दिया, सामने खड़ा व्यक्ति ऊपर से नीचे तक काँप गया।

'क्या बात है राजसिंह ?'

'जी·· कुछ नहीं···।' वह तुरन्त मुड़कर चला गया।

'कौन था···?'

'राजसिंह।'

'ओह ये सब जगह नारंग ने जासूस छोड़ रखे हैं।'

'करने दो चौधरी, क्या करते हैं देखते हैं !'

फ़ोन का चोग़ा उठाकर मैंने डायल घुमाया।

'हैलो, पाल अंकल हैं क्या ?'

'जी हाँ, मैं आनन्द वोल रहा हूँ। दीदी ने आपको डिनर पर बुलाया है। आँटी को भी लेते आएँ, उमेश आया हुआ है।'

'ओ० के० चौधरी, मैं चलूँगा। क्या होगा सोचने से, जो होना है होके ही रहेगा।' कहकर मैं बाहर निकल आया।

दीदी के वार्ड की तरफ़ जाते हुए रास्ते में अनिल मिल गया।

'अनु, तू यहाँ है ? सुधा जी कह रही थीं तुम देहली गये हो !'

'दीदी सही कह रही थीं, मैं देहली से वापस लौट आया हूँ। तेरा ऑफ हो गया क्या ?'

'हाँ, अनु।'

'तब तो ठीक है, मेरे यहाँ चलो। अपना उमेश आया है। पाल अंकल भी आएँगे। डिनर हमारे साथ ले लो।'

'मैं शायद डिनर तो न ले पाऊँ तुम्हारे साथ।'

'क्यों कहीं और जाने को हो क्या ?'

'नहीं, वैसे ही मन बड़ा खराब हो रहा है।'

'तू चल तो सही, अपना उमेश है न, हमसे भी बढ़िया डॉक्टर है, बिना दवाई के सब ठीक कर देता है। उमेश से मिलेगा तो वहाँ से आने को मन ही नहीं करेगा ! चल दीदी के वार्ड में बोल आते हैं, फिर घर चलेंगे।'

लौटते समय अनिल ने पूछा—

'अनु, यह सब मैं क्या सुन रहा हूँ ?'

'क्या अनिल···?'

डॉ० नारंग से कोई झगड़ा हुआ तुम्हारा ?'

कोई ज़बरदस्ती झगड़ना शुरू कर दे तो कोई क्या कर सकता है ?'

'बहुत उस्ताद है वह, बड़ी ऊँची पहुँच है उसकी।'

'यही राजनीति ही खा जाएगी हमें अनिल, मुझे कोई फाँसी तो दिलवा नहीं देगा। अधिक से अधिक सस्पेण्ड करा सकता है।'

'क्या कह रहे हो अनु, तुम्हें किसी ने कुछ कह दिया न, तो स्टूडैण्टस ही खा जाएँगे।'

'आज भी दिन में यूनियन के लीडर आये थे डॉ० जैन के पास। कह रहे थे, अगर आनन्द भैया को किसी ने कुछ कहा तो समझ लेना कॉलिज बन्द होगा।'

'नहीं अनिल हमें इस तरह जोश से काम नहीं लेना है, इस सबसे क्या होगा ? तब मरीज़ों पर क्या बीतेगी ?'

'लेकिन यह भी तो सोचो कि तुम्हारी वजह से स्टूडैन्ट्स हर किस्म के खून की माँग फ़ौरन पूरी कर देते हैं। वे तुम्हारे बिना क्यों आएँगे ब्लड बैंक में। तब क्या होगा मरीज़ों का।'

'यह सब सोचना अधिकारियों का काम है। मेरा कोई पर्सनल डिपार्टमैंट या ब्लड बैंक तो है नहीं।'

'अगर उन्हें ही सोचना होता तो यह सब होता ही क्यों ?'

'खैर, देखते हैं क्या होता है ? वैसे भी मैं बहुत उकता गया हूँ इस ब्लड बैंक से। एक तरफ़ तो हम रोते हैं कि खून नहीं है और यकीन जानो, मैंने अपनी आँखों से खून को गन्दे नाले में फेंकते देखा है उन लोगों को। न हमारे पास अच्छा स्टोर है, न सैपरेटर हैं और न हम प्लाज़मा बना सकते हैं। हम कुछ नहीं कर सकते सिवाय झगड़ने के।'

मेरा फ्लैट आ गया था।

'उमेश, आप हैं डॉ० अनिल और अनिल, ये हैं डॉ० उमेश।'

'नहीं, अनिल जी, अनु को परिचय तक कराना नहीं आता। इसे यों कहना चाहिए था—आप हैं डॉ० उमेश उपाध्याय सन आफ लेट लॉ० हरदयाल उपाध्याय एम०ए० डी० लिट और रुचि उपाध्याय के पति और डॉ० आनन्द के कनिष्ठ भ्राता···इत्यादि-इत्यादि।'

हम सब हँस पड़े। उमेश अभी भी उसी मुद्रा में खड़े थे।

'आप हैं मिसेज़ उमेश उपाध्याय।' रुचि भाभी का परिचय देते हुए मैंने कहा।

तभी पाल अंकल और आँटी ने प्रवेश किया।

'गुड ईवनिंग एवरी बॉडी।'

सब ने सिर झुकाकर अभिवादन किया।

'बहुत-बहुत मुबारक हो उमेश, कब ब्याह किया, किसी को खबर तक नहीं होने दी ?'

'अजी जनाब डॉ० अंकल, खबर तो तब करता न जब मुझे भी खबर होती ! यह तो एक सुबह मुझे उठा कर बताया गया कि आज

म्हारो ब्याह होवेगो। तब मैं के करता जी, जो ढोलकी गले पड़ गई बजानी पड़ी, कैसा ब्याह, किसका ब्याह ?'

सब हँस-हँस कर लोट-पोट हो रहे थे।

'सच अनु, अगर तुम्हारे साथ नहीं आता तो इस महान अभिनेता के अभिनय से वंचित ही रह जाता।' अनिल ने चुटकी ली।

'हाँ अनिल, यह उमेश बहुत बड़ा ऐक्टर है। अपना सब ग़म भीतर छिपाये सबको हँसाता फिरता है।'

'भैया, आपको दीदी बुला रही हैं।' रुचि भाभी ने सन्देश दिया।

'क्या बात है दीदी ?'

'अनु, शरद का कमरा नम्बर मालूम है तुम्हें ?'

'हाँ···क्यों ?'

'जाने कैसा होगा वह, उसे भी ले आओ न प्लीज़। यहाँ रहेगा तो कुछ तो मन बहल जायेगा उसका।'

'यह आज उस पर इतनी हमदर्दी क्यों ?'

'जानते तो हो सवि के सिवाय उसका कोई नहीं था और वह अभागी भाई को डॉक्टर बनाते-बनाते चल बसी।'

'आपको कैसे मालूम पड़ा यह सब ?'

'सविता की डायरी है मेरे पास, कभी पढ़ लेना। शरद से भूल कर भी ज़िक्र मत करना।'

मैं चलने लगा तो उमेश ने पूछा—

'अनु, कहाँ जा रहे हो ?'

'एक हैं मिस्टर शरद राय, उनको लेने जा रहा हूँ।'

'लगता है मेरी बारात जायेगी आज, मैं फिर दूल्हा बनूँगा। अबे घामड़, क्यों इतने बाराती इक्ट्ठे कर रहा है ?'

'उमेश, तमीज़ से बात करो।' मैं खीझ पड़ा।

'भला कमीज़ से कैसे बात कर सकता हूं, तुम्हीं बताओ ?'

न चाहते हुए भी मेरी मुस्कराहट निकल गयी।

'डॉ० आनन्द, कई बार कहा है गुस्सा मत किया करें। आपका ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है। जाओ अब जाते क्यों नहीं ?' चार्ली चैपलिन

की तरह एक्टिंग कर रहा था उमेश। उसे ध्यान से देखते हुए अनिल बोला—

'यकीन नही आता कि इन महाशय ने डी० लिट० किया है, ऐसे लगता है किसी ड्रामा कम्पनी का कलाकार है।'

'अरे अनिल, उमेश की हकीकत जान जाओ तो तुम्हें उसकी किसी वात पर यकीन नहीं आयेगा। ही इज···।' मैंने अनिल के कान में कहा।

'ओ नो !' चीख सा पड़ा अनिल—'अनु, कह दो यह सब झूठ है।'

'अनिल, मैं झूठ को सच का जामा कैसे पहना सकता हूँ।'

शरद का कमरा खुला हुआ था ; वह टेबल पर बैठ गया था और पन्द्रह-वीस लड़के घेरे थे उसे।

'आनन्द भैया, आप यहाँ···?' शरद चौंका।

'मैं यहाँ नहीं आ सकता क्या ?'

'ओ नो, ऐसा नहीं सर, मगर दीदी तो वोल रही थी कि आप देहली गये हैं।'

'हाँ गया था, लौट आया हूँ।'

'आइये न···।'

'क्या मीटिंग हो रही है शरद ?'

'भैया, जो कुछ हमने सुना, इतना गुस्सा आया कि वस पूछो नहीं। हमारे वस में होता तो उन सव को गोली मार देता। उस रात में हम उधर ही था, हम आपके वास्ते खून दिया था। आप ही से प्रेरणा लेकर हम रात में भी अपना फ्रैण्ड्स लाए थे। फिर भी गलत वोला वो नारंग का वच्चा कि हम उसे कुछ कह नहीं पाया।'

'भैया, अगर कुछ हुआ न तो इधर समझो कॉलिज बंद, सब लोग यही वोलता है।'

'नहीं शरद नहीं···यह ग़लती कभी नहीं करना। जो तुम मेरे हक में करने जा रहे हो सब मेरे खिलाफ़ जायेगा।'

'वह कैसे··?'

'शरद, तुम लोग स्ट्राईक करेगा तो वह लोग यही कहेगा आनन्द

शरद का भाई है, उसी के कहने से हुआ है सब, सो ऐसा भूलकर भी नहीं करना।'

'आप लोग जाओ, हम बाद में बात करेगा' शरद ने अपने साथियों से कहा। वे सब एक-एक कर चले गये।

'शरद, तुम कपड़ा बदल लो, तुम्हें अपने साथ चलना है।'

'कहां···?'

'हमारे घर।'

'क्यों ?'

'हमारे एक मित्र की मैरिज हुई है, उसी का रिसैप्शन है।'

'अच्छा···मैं अभी आता हूं।'

फ्लैट में वापस आते ही उमेश ने व्यंग्य किया—

'कोई और रह गया हो तो उसे भी बुला लो।'

'हाँ, एक रह तो गये हैं···।'

'अब कौन···?'

'डॉ० चौधरी ! शरद, जाग्रो उन्हें साथ ले आओ। उनका भी ऑफ़ होने वाला होगा।'

'देख लो अनु, यह जमघट बहुत महंगा पड़ेगा।' उमेश आँखें बचा कर बोला।

'मैंने किसी को नहीं बुलाया, सब दीदी का प्रोग्राम है। उन्हें बताओ महंगा पड़ेगा कि सस्ता। बुलाऊँ दीदी को ?'

'अरे ना बाबा, फिर मुर्ग़ा बनवाओगे क्या ?'

सब हँसने लगे।

'अनु, खाना तैयार है।' किचन से दीदी ने आवाज़ लगायी।

'आओ अनिल।' मैं उठ खड़ा हुआ।

फ़र्श पर ही दरी बिछा दी गयी। सब दायरा बना कर बैठ गये।

उमेश खाने के दौरान भी लतीफ़े और शेर सुनाता रहा, हँसी के फ़व्वारे छूटते रहे।

खाने के बाद सब लोग ड्राइंग रूम में आ गये।

'अनु तुम तो कुछ सुनाओ। तुमसे तो अर्सा हुआ कुछ सुने हुए।' उमेश बोला।

'हाँ भैया, हम भी तो सुनें आपकी लिखी बहुत नज़्में सुनी हैं। आपके मुँह से सुनें तो कोई बात बने।'

'अच्छा अनु' उमेश मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोला—'एक फ़रमाइश और भी पूरी कर दो···एक नज़्म हो जाय।'

'अरे छोड़ो यार, इस समय···।'

'नहीं अनु, एक बार वही नज्म सुनाओ जिसमें तुमने कहा था—

'स्याही झूठी थी खून झूठा था
और मैं इस झूठ से दिल को बहला लेता हूं।'

'हाँ अनु।' दीदी भी बोल उठी—'सुना दो ना।'

मैं धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा—

'रात गहरा गयी थी
कुछ सुनहले ख्वाबों का झोंका दे
मुझको झुठला गई थी।
फ़जाएँ बेमालूम लगीं
दिल टूटा हुआ
साँसें तक खुद से महरूम लगीं
मैं अनजबी-सा खुद से भी
ज़िन्दगी के कांधों पे सर टिकाये खड़ा
खुद से भी बिछुड़ गया हूँ
बेवक्त कफ़न में सिकुड़ गया हूँ
इक ज़िन्दगी जी पाने की हस्रत में
जाने कितनी मौतें मर गया हूँ।'

सब लोग संजीदा होकर सुन रहे थे।

'सचमुच बहुत बढ़िया नज़्म है, अनु।' पाल अंकल ने मेरी पीठ थपथपायी। फिर बोले—'भई, अब चलें हम लोग। दस बज गये हैं। थैंक्यू सुधा, थैंक्यू एवरी बॉडी।'

एक-एक कर सब लोग चले गये।

सिर्फ मैं, उमेश, रुचि भाभी और दीदी ।

'अनु मैं सोच रहा हूं, हम लोग कल सुबह ही कूच कर जायँ !'

'ऐसी भी क्या आग लगी है यहाँ जो तुम दो-चार दिन भी नहीं ठहर सकते ?'

'वक्त वहुत कम है अनु, जो करना है कर लूँ ।' उदास हो गया था उमेश ।

'ओ. के. जैसे तुम्हें ठीक लगे ।'

मैं, सुधा दीदी मेरे वाले कमरे में आ गये और भाभी और उमेश सुधा दीदी के कमरे में चले गये । दीदी ने लेटे-लेटे पूछा—

'अनु, यह क्या हो गया, रुचि वेचारी···?'

'भाभी को सव कुछ मालूम है दीदी ।'

'फिर भी उसने विवाह कर लिया ?'

'भाभी और उमेश प्यार की उस ऊँचाई तक पहुँच गये थे दीदी, जहाँ से लौट पाना सम्भव नहीं था । लौटने के चक्कर में दोनों अपना जीवन गँवा बैठते ।'

'वहुत वड़ा वलिदान किया है रुचि ने ।'

'हाँ दीदी ।'

'अनु, आर्ण्टा मुझे वता रही थी तुम्हारे उस रात वाले बर्ताव को ले तुम्हारी शिकायत हुई है ।'

'दीदी, रेडक्रास की कमेटी से तो वैसे ही मैं त्यागपत्र देने का फ़ैसला कर चुका हूँ । कल ही मिस्टर साहनी से वात करूँगा ।'

'तुम्हारी सोसाइटी की मीटिंग कब है ?'

'हर सोमवार होती है । इस बार अपने यहाँ ही है ।'

'इस मीटिंग में कोशिश करना बात करने की हॉस्पिटल के वारे में ।'

'नहीं दीदी, अभी वह सब सम्भव नहीं है । हमारे पास इतना पैसा कहाँ है ?'

'कुछ तो सोचना ही होगा । हम भाई बहन ने जो सपना देखा है उसे पूरा करना है ।'

'कोशिश करूँगा दीदी, सारी ज़िन्दगी अब यही तो करना है।'

फिर एक चुप्पी फैल गयी। दीदी शायद सो गयी थीं मगर मैं उल्लुओं की तरह जाग रहा था और गहन अंधेरे में जाने क्या खोज रहा था! इस अंधेरे के कैनवैस पर एक तस्वीर उजागर हो उठी थी, चार्ली चैपलिन की मुद्रा में मुस्करा रहा था उमेश···एक घूँसा-सा पड़ा दिल पर और एक कविता की पंक्ति कौंध गयी 'हसरत तो उन गुँचों पे है जो बिन खिले मुर्झा गये।' उमेश के चेहरे पर एक और चेहरा जगमगाने लगा था कमल पुष्प-सा चेहरा···अद्वितीय सौन्दर्य, निगाहें चिपक कर रह जाएँ···इस सौन्दर्य पर विषाद की एक छाया स्पष्ट दीख पड़ रही थी। पीड़ा की एक लहर मेरे दिलो दिमाग़ को खुरचने लगी ···कैसे सहलाऊँ इस ज़ख्म को जिसका इलाज ही नहीं है। इसके बाद कैनवैस पर से सब लुप्त हो गया, रह गयीं उनकी उलझी आड़ी-तिरछी रेखाएँ जो एक मार्डन आर्ट की तस्वीर-सी लगी जो कुछ भी हो सकता था अपने सोचने का अन्दाज़।

मन बहुत व्याकुल हो उठा। मैं उठकर बाहर बरामदे में टहलने लगा। तभी कहीं से सिगरेट के धुएँ की महक आयी, सामने उमेश खड़ा जाने किन यादों में गुम था···आमने-सामने आ खड़े हुए हम।

'सोए नहीं अनु ?' उमेश धीमे-से फुसफुसाया।

'नहीं···सो ही नहीं सका।'

'अनु, क्या रुचि को सम्हाल कर रख सकोगे तुम ?' बहुत दर्द था आवाज़ में।

'उमेश, व्यर्थ की कल्पनाओं से अपना जी मत दुखाओ।'

'हकीकत से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता अनु, बोलो, रुचि को सम्हाल लोगे न, वादा करो···।'

'जानते हो भाभी मुझे जान से प्यारी है।'

'अनु···।' मुझे अपनी बाहों में समेटता उमेश बोला।

'उमेश, जाओ सोने की कोशिश करो।' मैं भी अपने कमरे की तरफ़ बढ़ गया था। सोचें घिर-घिर आयी थीं! जाने कब सुबह हो गयी।

दीदी हॉस्पिटल जा चुकी थीं, उमेश और भाभी तैयार हो रहे थे जाने के लिए, मैं खामोश खड़ा था।

'आप तैयार नहीं होंगे भैया ?'

'भाभी, मुझे कौन-सा ड्यूटी पर जाना है ? मैं आजकल छुट्टी पर हूँ।'

बस स्टैंड पर पहुँचे। उमेश टिकट लेने गया तो मैंने रूचि से कहा—

'भाभी, उमेश का खयाल रखना।'

'आप चिन्ता न करें भैया, यह बताइये, दीदी को लेकर कब आ रहे हैं ?'

'कुछ कह नहीं सकता, अभी तो परेशानियों से इस कदर घिरे हैं कि कहीं जा पाना सम्भव नहीं लगता, वैसे जब भी मौका मिलेगा, सबसे पहले आप ही के पास आएँगे।'

उमेश लौट आया था।

'अनु, जयपुर की सीधी डीलक्स तैयार है। चलो रुचि, बस का टाईम हुआ ही जाता है।'

कंडक्टर सीटी दे चुका था। मेरी बात मुँह में रह गयी।

हवा में हाथ हिलते रहे, बस तेज़ी से दूर और दूर होती गयी, फिर एक बिन्दु बन कर आँखों से ओझल हो गयी। थके कदमों से लौट पड़ा मैं घर की ओर।

आकर लॉन में पड़ी आराम कुर्सी में धँस गया। सामने पड़ी टेबल पर पांव फैला अधलेटा-सा हो गया था। सब कुछ ऐसे लग रहा था जैसे कोई खूबसूरत ख्वाब था जिसे वक्त के थपेड़ों ने तोड़ डाला है···। सहसा दिमाग़ में एक बिजली-सी कौंधी—

'यह मृत्यु क्या है ?'

'जीवन एक प्रश्न है और प्रश्न का उत्तर है मृत्यु।'

'मृत्यु के परे क्या है ?'

'कैसे चल रहा है यह संसार ? हम कौन हैं ? क्या हैं ? क्यों हैं ?'

'क्यों नहीं सोचते हम इसके बारे में। ज़रा-सी सफलता पर इतराने

लगते हैं, खुद को खुदा मानने लगते हैं। आखिर वह कौन-सी शक्ति है जो एक उलझन को सुलझाने पर हज़ारों उलझनें और पैदा कर देती है ?'

'हम अपनी सभ्यता पर इतराने वाले कौन हैं ? हम झूठ-मूठ के मसीहा क्यों बने फिरते हैं ?'

'आखिर क्या है यह सब ?'

प्रश्न चिह्नों की कतार बढ़ती चली गयी। एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं था मेरे पास।

फिर लगा जैसे मैं स्वयं एक प्रश्न बनकर उस पंक्ति में खड़ा हो गया हूँ।

मुझे लगा मैं एक विन्दु हूँ···।

'एक विन्दु हूँ मैं,
जहाँ से दायरे खिंचते हैं।
दायरे प्रश्न चिह्नों के,
प्रश्न जो जीवन है,
प्रश्न जो मृत्यु है,
प्रश्न जो उत्तर है,
प्रश्न ही प्रश्न हैं ?
ऐसे दायरों में,
दिल और दिमाग़,
एक षड्यंत्र रचते हैं,
और उपजता है प्रश्न।
अतीत से कोई उत्तर नहीं मिलता।
अतीत तो स्वयं उलझा हुआ बवंडर है।

'अनु···ए अनु···।' चौंक कर देखा—दीदी सामने खड़ी थीं।

'कब से खड़ी हूँ तुम्हारे पास, तुम्हें खबर ही नहीं, बैठे-बैठे किस समाधि में लीन हो जाते हो ?'

'प्रश्न चिन्हों में खो गया था दीदी···।'

'प्रश्न हूँ उत्तर नहीं हूँ।
क्योंकि मैं नश्वर नहीं हूँ।

'उमेश को छोड़ आये ?'

'हाँ···उसी में तो उलझा हुआ था ।'

दिन बीत नहीं रहे थे, उड़ रहे थे । चार महीने बीत गये···उमेश के और भाभी के दो तीन पत्र आये थे इस बीच ।

मार्च का महीना था फिर भी अच्छी खासी ठंड पड़ रही थी । एक कान्फ्रेंस के सिलसिले में मुझे देहली जाना था, उमेश का पता किया तो मालूम चला वह देहली में नहीं है ।

भाभी को फ़ोन किया, वह भी नहीं मिलीं । सोचा अचानक पहुँच कर चौंका दूँगा । अनिल मेरे साथ जा रहा था । दीदी अम्बाला गयी थीं डिपार्टमैंट में । इधर मेरे हालात और बिगड़ गये थे । नारंग पहली शिकायत में सफलता न पाकर मेरे ज्यादा खिलाफ़ हो गया था । तूफ़ान के पहले की खामोशी-सी छाई थी ।

मैं ब्लड बैंक से ट्राँसफ़र होकर पैथोलोजी डिपार्टमेंट में आ गया था । यहां भी चैन नहीं था । डॉ० चौधरी और डॉ० जैन भी ट्रांसफ़र होकर मेरे साथ आ गये थे । देहली कान्फ्रेंस में मैं अपने तौर पर ही जा रहा था । इसी बात को लेकर हंगामा खड़ा हो गया था । कॉलिज अथारिटी मुझे भेजना नहीं चाहती थी लेकिन कान्फ्रेंस वालों ने मुझे एक पेपर सौंप दिया था । एक बार फिर मैं विजयी रहा मगर इस विजय के पीछे जो पराजय थी वह मैं नहीं देख सका ।

मैं और अनिल जब कांफ्रेंस से लौटे तो एक ऐसी दुर्घटना घट चुकी थी कि मैं हतप्रभ रह गया ।

रिक्शा के पैसे चुकाकर जैसे ही मैं भीतर घुसा तो देखा, बहुत लोग जमा थे । शरद बड़ा उत्तेजित लग रहा था । मुझे देखकर बोला —

'लो, आनन्द भैया भी आ गये।

मेरी निगाहें तेजी से दीदी को ढूँढ़ रही थीं। तभी वह नजर आईं ···आँखें सुर्ख, चेहरा लटका हुआ··· ।

'क्या हुआ है दीदी···सब कुशल तो है न ? दीदी का हाथ थाम कर मैंने व्याकुल स्वर में पूछा।

'अनु, सब लुट गया···तेरी बरसों की मेहनत फुँक गई !'

'हुआ क्या है···?'

'अनु···!' दीदी की आवाज़ नहीं निकल पा रही थी।

'क्या हुआ चौधरी, आखिर मुझें बताते क्यों नहीं ?' मैं अधीर हो उठा।

'अनु, तुम्हारी लैब में आग लग गयी थी, सब कुछ जलकर राख हो गया···तुम्हारी बरसों की मेहनत उस आग में झुलस गयी···।'

'नहीं···!!!' मैं चीख पड़ा।

'कैसे लगी आग ?' अनिल ने उत्तेजित स्वर में पूछा।

लेकिन कोई इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका।

सब खामोश खड़े थे।

अनिल की आँखें आग उगल रही थीं—

'बोलो चौधरी, कैसे हुआ सब ?'

'मालूम नहीं अनिल।'

'रिपोर्ट दर्ज कराई ?'

'नहीं, अभी-अभी तो आ रहे हैं वहीं से।'

अनिल की उंगलिया फ़ोन के डायल पर थिरक रही थीं।

'हैलो कौन···? पापा, मैं अनिल बोल रहा हूँ।'

'हाँ·· अभी लौटा हूँ।'

'पापा, प्लीज़, हमारी हैल्प कीजिए।'

'यहाँ डिपार्टमैंट में आग लग गयी है, हमारे विचार में यह आग लगाई गयी है।'

'रिपोर्ट दर्ज करा दूँ।'

'अच्छी बात पापा, थैंक्स !'

अनिल चौधरी को साथ लेकर रिपोर्ट दर्ज कराने चला गया। मैं डॉ० जैन के साथ डिपार्टमैंट की ओर लपका। सब कुछ जलकर राख हो गया था। मुझे लग रहा था कि मैं ही राख हो गया हूँ।

मेरा शरीर सुन्न होता जा रहा था। मुझे इस बात की इतनी चिंता नहीं थी कि मेरे पेपर जल गये थे, उस ज़िन्दगी की चिंता थी जिसके लिए यह सब कर रहा था।

मेरे भीतर से कोई कह रहा था, यह आग लगी नहीं, लगाई गयी है। अंधेरे में कई चेहरे मेरे सामने उजागर हो रहे थे···घृणा ही घृणा थी उन सब चेहरों पर, एक विजयी मुस्कान थी, धीरे-धीरे वह मुस्कराहट हँसी में बदली और अन्ततः कहकहों में। उन ठहाकों के बीच दब गया था मैं···मेरा अस्तित्व।

इस तरह से बदला लिया जाएगा यह मैं सोच भी नहीं सकता था। जिस किसी ने भी यह काम किया होगा उसके दिल में ज़रा भी दया नहीं जागी होगी··? मुझे पता होता कि ऐसा कुछ होने वाला है तो मैं कांफ्रेंस में जाता ही नहीं।

'बेटे, क्या सोच रहे हो ? पाल अंकल आये थे। शायद दीदी उन्हें ले आयी थी। मैं चुपचाप सिर झुकाये उनके साथ घर आ गया।

घर में भी मन नहीं लग रहा था। न शाम को कुछ खा पाए न रात सो पाए। सुबह बहुत भारी मन से उठा निरुद्देश्य-सा निकल पड़ा, हॉस्पिटल की तरफ़ कदम बढ़ गये। काफ़ी देर तक खड़ा हॉस्पिटल की बिल्डिंग को देखता रहा। वहाँ से हटा तो एक सड़क पर बढ़ गया। अपने से बेखबर-सा चलता रहा मैं ! थक गया तो एक पेड़ तले तने से पीठ टिकाकर बैठ गया। जाने कब तक बैठा रहा वहाँ ! बैठे-बैठे भी मन ऊब गया तो फिर चल दिया। जाने क्या वक्त होगा, कुछ खबर नहीं थी, मैं तो यों चल रहा था जैसे कोई नींद में उठकर चल देता है।

सड़कें नापता कॉफ़ी हाऊस की तरफ़ बढ़ गया। एक टेबल खाली था, वहाँ जा बैठा। बेहद शोर था। इसी शोर में डुबो देना चाहता था खुद को···बेयरा दो बार आ चुका था, किसी को आना है, इतना कह कर मैं चुप रह जाता।

तीसरी बार जब बेयरा आया तो लगा अब यह बहाना नहीं चलेगा।

'एक डोसा, एक कॉफ़ी।' मेरे मुँह से निकल गया।

डोसा की याद आते ही उमेश याद आ गया। इस क्षण उसकी बहुत ज़रूरत महसूस हुई। उसे कॉफ़ी हाऊस में बैठना बहुत पसन्द था। वह जब भी कॉफ़ी हाऊस आता इतने ज़ोर-जोर से 'जोक सुनाता कि लोग बरबस ही उसकी ओर देखते रह जाते।

डोसा और कॉफ़ी वैसे के वैसे पड़े थे। पेमेंट कर मैं बाहर आ गया। बड़े-बड़े शो रूमों के सामने घूम रहा था। इस बाज़ार में सब कुछ नुमाइश-सा लगा। बाँहों में बाँहे डाले जोड़े, सैंट की खुशबू, परफ्यूम की महक, सिगरेट का धुआँ, सब कुछ ज़हरीला लग रहा था। निरुद्देश्य-सा सिनेमा का टिकट ले सिनेमा में घुस गया। कुछ पल ही बैठ सका मैं। बड़ी उकताहट, बेचैनी छा गयी थी। उठकर बाहर आ गया! रोज़ गार्डन से गुजरते हुए गुलाब की महक, गुलाब···दिल किया सब कुछ उखाड़ कर फेंक दूँ। जो कुछ सामने हो उसे तोड़ फोड़ डालूँ···। चलते-चलते झील की तरफ़ बढ़ गया···। तभी कहीं से बाँसुरी की आवाज़ सुनी, ऐसा लगा कोई गर्म-गर्म सीसा उड़ेल रहा हो कानों में। तेज़ कदमों से वहाँ तक पहुँचा, खान था, उसके हाथों से बांसुरी छीन ली मैंने।'

खान ने अजीब-सी नज़रों से मुझे देखा और सोज़भरी आवाज़ में कहा—'क्या हुआ डाक्टर मियाँ, यह क्या हालत बना रखी है?'

'खान मैं लुट गया हूँ, बर्बाद हो गया हूँ···तेरा वह यार जो चुप-चाप बैठा सब तमाशा देख रहा है, कहाँ है वह?

'अरे डॉ० मियाँ घबराओ नहीं, मेरा यार सब जानता है···
वह खयाली है खयालात समझने वाला।
तुझसे बेहतर तेरे हालात समझने वाला।'

मैंने खीझकर बाँसुरी उसकी गोद में पटक दी।

सूरज डूब चुका था। अंधेरा फैलने लगा था। मैं अब लौट रहा था अपने घर को। पंछी अपने-अपने घोंसलों की तरफ़ जा रहे थे। मैं भी

हारे जुआरी की तरह लौट रहा था खामोश, निढाल, उदास···।

घर अंधेरे में डूबा हुआ था। चाँद अपना पीला बीमार चेहरा लिये उभर आया था। मैं बाहर लॉन में ही लेट गया। खामोश आसमाँ को निहारता रहा···।

काफ़ी देर बाद उठकर कमरे में गया। अंधेरे में टटोल कर स्विच ऑन किया। ट्यूब लाईट की चमक से आँखें चौंधिया गयीं। आईने के सामने खड़ा था मैं, बिखरे बाल, धूल से सना चेहरा, बेतरतीब कपड़े··· क्या है यह सब···?

'क्या हाल है डॉ० आनन्द ?' आईने ने प्रश्न किया।

मैं खामोश था।

'बहुत खूब। दूसरों की ज़िन्दगी की कीमत आँकने वाले डॉ० आनन्द ने अपनी ज़िदगी की क्या कीमत लगायी ?'

मैं तब भी चुप रहा।

'बोलो अभिमानी डॉ०, कहाँ गया तुम्हारा गर्व ?'

'कौन हो तुम ?' मैं काँप गया था।

'बहुत खूब ! अपना बेनकाब चेहरा पहचानने से भी डर रहे हो।'

'कहाँ गया वह आदर्श इंसान···बड़ी-बड़ी बातें बनाने वाला···जो सब का नेता बना फिरता था···सब को राह दिखाने का दम भरने वाले मसीहा ने पहली ही असफलता पाते ही घुटने टेक दिए ? कहाँ है वह आत्मविश्वास···दृढ़ संकल्प···? जीवन जीने का यह सलीका नहीं, यह तो जीवन ढोने का तरीका है···।'

मैं हथेलियों से मुँह छिपाकर सुबकने लगा।

'रोने से क्या होगा डॉ० ! इस तरह खुद को झुठलाना कायरता है···।'

'तब मैं क्या करूं···तुम्हीं बताओ···!'

'मैं बताऊँ···?' आईने में से एक ठहाका गूंज गया—बहुत खूब ! दिनभर मेरे कत्ल की कोशिश करते रहे और अब मुझी से पूछते हो···।

'मैं···कत्ल···?' मैं बुदबुदाया।

'और नहीं तो क्या ? तुम बहुत स्वार्थी हो। तुम मेरा खून करके रहोगे। लेकिन याद रखो डॉक्टर, तुम मर भी जाओगे तो इस दुनिया में कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा। सब दो-चार दिन रोएँगे और फिर भूल जायेंगे। अगर लोगों की यादों में बसे रहना चाहते हो तो कुछ ऐसा करके मरो जो तुम्हें जीवित रखे। अनु, तुम जिस वजह से टूटे हो वह एक झूठ है और जानते हो झूठ के पाँव नहीं होते, झूठ में दम नहीं होता। जब आदमी झूठ का सहारा ले लेता है तो वह बहुत दिन तक नहीं रह सकता। एक झूठ को बचाने के लिए सैंकड़ों झूठों का सहारा लेना पड़ता है और फिर आदमी एक दिन उसी में दब के रह जाता है।'

मैं आँखें फाड़े आईने को घूरता रहा।

'हालात से डरो नहीं। जीवन तो शतरंज का खेल है। हालात की सफ़ेद-सियाह परिस्थितियां शतरंज के मोहरे हैं। तुम्हें इन मोहरों को समझना है, डरना नहीं है, परिस्थितियों के आगे घुटने नहीं टेकने हैं उनसे लड़ना है, जूझना है···!'

मेरे कदम अनजाने में आईने के पास बढ़ गये। आईने से नज़रें सटाकर देखा, वहाँ कोई नहीं था। मुझे चेताने वाला चेहरा कहीं लुप्त हो गया था। रह गया था सिर्फ़ धूल से पुता हुआ वह चेहरा जो मेरा आज का चेहरा था, जो अभी-अभी अपनी हार मान चुका था।

मैं आकर निश्चेष्ट-सा पलंग पर लेट गया। सोचने लगा, लोग जब परेशान होते हैं तो क्यों वे शराब और सिगरेट का सहारा लेते हैं। शायद आत्मविश्वास की कमी के कारण। आत्मविश्वास जो भाग्य के लौह-द्वार की चाबी ही है···।

अचानक कमरे का दरवाज़ा चरमराया, धीमे-से कदमों की थकी-थकी-सी आहट···।

'अनु, कहाँ थे तुम ? हम सब तुझे ढूँढते-ढूँढते पागल हो गये ?' सुबह से दीदी की आवाज़ थरथरा रही थी।

मेरी सोचों की कड़ियाँ झनझनाकर टूट गयीं। सिर उठाकर सूनी आँखों से देखता रहा दीदी को···।

'कहाँ गया था अनु, बोलता क्यों नहीं ?' इस बार दीदी के स्वर में खीझ थी।

'कहीं दूर बहुत दूर निकल गया था खुद से। लौट आया हूँ, जाने कहाँ जा रहा था मैं ?' मुझे लगा मेरी आवाज बहुत दूर से आ रही है।'

'क्या बहकी-बहकी बातें कर रहा है ?' दीदी ने मेरे कंधे झकझोर दिये।

'हाँ बहक ही गया था दीदी, पर अब नहीं बहकूँगा। मैं हारकर अपना खोया आत्मविश्वास फिर से पा गया हूँ, मैं नये सिरे से जीवन शुरू करूँगा।'

'दीदी भूख बहुत तेज़ लगी है।' किचन में घुसते ही बोला मैं।

दीदी ने अधिक बहस नहीं की। वे चुपचाप किचन में चली गयी। पाँच-सात मिनट बाद आकर पूछा—

'क्या खायेगा अनु ?'

'कुछ भी।'

थोड़ी देर में वे सैंडविंच और चाय ले आयीं।

मैंने चेहरे पर मुस्कराहट लाने की कोशिश की। सुधा दीदी का चेहरा बहुत शांत नज़र आ रहा था। शरद की पूर्णिमा के चन्द्रमा-सा मुख स्नेह की चाँदनी छिटकाता हुआ।

'अच्छा दीदी, मैं ज़रा पाल अंकल के पास होकर आता हूँ।'

दीदी कुछ नहीं बोलीं, केवल मुझे बाहर जाते हुए देखती रहीं।

डॉ० पाल घर से बाहर, सड़क पर ही टहलते मिल गये। मुझे देखकर संजीदा हो उठे—

'अरे आनन्द बेटे, तू कहाँ था सुबह से ? यहाँ तो जिसे भी पता चला वह घबरा गया। गया कहाँ था ?'

'कहीं नहीं, एक छोटी-सी लड़ाई लड़ रहा था।'

'किस से ?'

'अपने आप से।'

'नतीजा ?'

'आखिर वह दम्भी, अहंकारी डॉ० आनन्द हार गया मुझसे ।'

'क्या फ़लसफ़ियाना बातें कर रहे हो आनन्द···?'

चलते-चलते हम दोनों डॉ० पाल के घर तक आ गये थे ।

'मम्मी, अनु भैया आये हैं ।' यह पाल ग्रंकल की इकलौती बिटिया थी माधवी ।

'अनु, कहाँ गया था रे तू ? सुधा बेचारी पागलों की तरह खीजतो फिर रही थी ।'

'आण्टी, शर्मिन्दा हूँ, मेरी वजह से आप सब लोगों को दुःख पहुँचा ।'

'अरे पागल, हमारी क्या बात है ? सुधा बिटिया का चेहरा देख कर तो ऐसा लगता था कि सारा संयम खो बैठी है। तुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था ।'

'हाय! कितना अभागा हूँ मैं । ऐसा स्नेह ठुकराकर आत्महत्या की बातें कैसे सोचने लगा था मैं ।'

लेकिन कोई यह क्यों नहीं सोच रहा कि कितना कुछ लुट गया है मेरा ? मेरी सारी मेहनत किसी ने फूंक डाली, उसकी बात क्यों नहीं सोचते ? क्यों नहीं सोचते कि क्या गुज़री होगी मुझ पर ?

'किस सोच में डूब गये बेटे ?' पाल ग्रंकल ने मेरा कंधा थपथपाया ।

'ग्रंकल, मैं सोच रहा हूँ कि मैं फिर से ब्लड बैंक में लौट जाऊँ ।'

'क्या कह रहे हो···?'

'ग्रंकल, मैं नये सिरे से सब दोहराना चाहता हूँ और विश्वास दिलाता हूँ अब कभी आपको शिकायत का मौका नहीं दूँगा ।'

'मगर बेटे, फिर से क्यों खुद को उन काँटों में घसीटना चाहते हो ?'

'ग्रंकल, मुझे खुद को जीवित रखना है और यह तभी हो सकता है जब मैं वहाँ रहूँगा । घबराइये नहीं ग्रंकल, मैं उस घटना को एक दुर्घटना समझकर भूल चुका हूँ और कभी इस बात का ज़िक्र नहीं करूँगा । मैं आपसे रिक्वेस्ट करने आया हूँ कि आप मेरी मदद करें ।'

'अनु, कुछ भी करने से पहले सब अच्छी तरह से सोच-समझ लो ।'

'सब सोच समझ कर आपके पास आया हूँ इस उम्मीद के साथ कि आप मुझे निराश नही करेंगे।'

'मैं कोशिश करूँगा बेटे।'

'अच्छा, अब चलता हूँ। दीदी राह देख रही होंगी।'

डिनर के बाद दीदी बुदबुदायीं—

'अनु, तूने यह भी सोचा कि तुझे कुछ हो जाता तो मेरी क्या हालत होती, मैं तो जीते जी मर जाती।'

'दीदी···कुछ नहीं कह सकता, सिर्फ़ अपनी ग़लती के लिए क्षमा माँग सकता हूँ।'

'खैर···अब क्या सोचा है तूने?'

'दीदी, मैं वापस ब्लड बैंक जाना चाहता हूं।'

'पागल हो गया क्या···?'

'नहीं दीदी, अभी तो होश में आया हूँ। मैंने जहाँ से कैरियर शुरू किया था, एक बार फिर वहीं नये तरीके से आरम्भ करूँगा। मेरी हार की नींव मेरे हाथों पड़ी थी, अब वहीं मैं विजय का मीनार खड़ा करूँगा।'

'ठीक है···जैसा अच्छा समझो।'

'दीदी, अब तक आप मेरा साथ देती आयी हैं। अब फिर आपकी परीक्षा का वक्त आ गया है। मैं रात-दिन एक कर दूँगा, इतनी मेहनत करूँगा कि हो सकता है सब कुछ भूल जाऊँ। आपको शिकायत नहीं करनी होगी तब।'

'अच्छा बाबा, न शिकायत करूँगी न शिक्वा। मेरा तो एक ही सपना है तुम्हारी सफलता।'

ब्लड बैंक मेरे लिए एक मंदिर की तरह था। एक बार फिर से लौट आया था मैं वहाँ सिजदा करने। पाल अंकल की कृपा से मौका मिल ही गया।

मैंने एक पैनल बनाया, एमरजेन्सी पैनल। उसमें हर ग्रुप का रक्त दान करने वाले पच्चीस-पच्चीस दानी रखे। अनिल चौधरी, डॉ०

जैन सब एक जुट हो गये थे मेरे साथ। सुधा दीदी को जब भी वक्त मिलता मेरे नोट्स बनातीं। मैं सदा वक्त निकालकर ऐसे लोगों से मिलता रहता जो रक्त-दान में उत्साह दिखा सकते थे।

बड़ी-बड़ी किताबों के पन्ने, माइक्रोस्कोप में लगी स्लाईड्स, उन पर बिखरी, छिपी हुई रहस्य की बातें, जो खोजनी थीं मुझे। इस खोज में सभी मेरे साथ थे। पाल अंकल का स्नेह, दीदी का त्याग···।

दो साल बीत गये। जनवरी की कड़ाकेदार ठंड पड़ रही थी। पिछले कई दिनों से मैं अपने कमरें में कैदी-सा बंद था। थीसिस पूरा हो चुका था, बिखरे पन्ने समेटे जा चुके थे। एक धुँधली-सी टिम-टिमाती रात को मैं सारे काग़ज़ तरतीब से फाइल में लगाकर कमरे से बाहर आया। सब अजीब-अजीब सा लगा। दो बरस की मेहनत का थका हुआ शरीर लेकिन एक विजेता मन लिये मैं चाँद-तारों को देख रहा था।

अगले ही दिन थीसिस की जिल्दें बंधवाकर दे आया यूनिवर्सिटी के रिसर्च-विंग में।

परिणाम अनुकूल रहा। मैं खुशी से चिल्ला उठा—

'दीदी ! अपना अनु सफल हो गया दीदी···!!'

'सच···अनु!'

दीदी ने अपनी बाँहों में समेट लिया था मुझे। बहुत दिनों के बाद मुझे मालूम हुआ कि मैं अभी तक जीवित हूँ। कहाँ खोया रहा मैं इतने दिन···।

अनिल, माधवी, पाल अंकल और आंटी, डॉ० जैन, मिसेज़ जैन, डॉ० चौधरी सबको इकट्ठा कर लिया सुधा दीदी ने।

'आज का दिन हम सब के लिए बहुत बड़ा दिन है सुधा बिटिया, कोई सोच भी नहीं सकता था कि आनन्द इतनी बड़ी कामयाबी हासिल कर लेगा।'

'अंकल, यह सब आप लोगों के प्यार और आशीर्वाद की वजह से हो सका।'

मुझे उमेश की याद आ रही थी।

इस क्षण वह यहाँ होता तो कितना खुश होता।

कई दिन वीत गये। कितने आनन्ददायक क्षण थे। हर तरफ़ सम्मान, सत्कार, असीम प्यार···जो पराये थे वे भी अपने हो गये, डॉ० नारंग, डॉ० गुप्ता, ब्रिगेडियर कटारिया···सव तरफ़ अपनापन था··· मैंने हारी बाज़ी जीत ली थी।

एक शाम दीदी और मैं लॉन में वैठे बातें कर रहे थे कि टैक्सी के रुकने की आवाज़ सुनायी पड़ी।

'देख तो अनु, कौन आया है?'

मैं बाहर लपका और टैक्सी पर नज़र पड़ते ही चिल्लाया—

'अपना उमेश आया है दीदी!'

उमेश ने अपनी बाहों में उठा लिया मुझे!

रुचि भाभी पास खड़ी मुस्करा रही थीं।

'दीदी मैं मर जाता तो भी इस गधे को खबर नहीं करता। मगर क्या करूँ, इस नालायक ने गुल ही ऐसा खिलाया है कि भागना पड़ा।' उमेश चहक रहा था।

'अनु भैया जानते हैं जितनी ख़ुशी उमेश को हुई है न, उतनी तो शायद आपको भी नहीं हुई होगी। जब यूनिवर्सिटी से आपका फ़ोन मिला, नाचते चले आये थे। ये आस-पड़ोस के लोग बड़ी हैरत से देख रहे थे इनकी जोकरों जैसी करतबों को।'

'जानता हूँ भाभी, उमेश कितना चाहता है मुझे! मगर भाभी, मैं कितना बेबस हूँ, इस जान से प्यारे दोस्त के लिए कुछ नहीं कर सकता।'

रुचि भाभी का चेहरा वीरान हो उठा। आँखों में एक तूफ़ान आया और गुज़र गया। एक कशमकश थी भाभी की आँखों में!

'भाभी, आपकी आँखें इतनी सुन्दर हैं कि जी चाहता है चूम लूँ इन्हें। हाय भाभी! वड़ी कातिल हैं ये आँखें।'

'अबे, क्या इश्क लड़ा रहा है मेरी बीवी से?' उमेश ने अपनी वांहें मेरी गर्दन में डाल दीं।

'उमेश, भाभी की आँखें देखकर खो गया था मैं। जी करता है इन्हें देखता ही रहूँ!'

'हो गयी अपनी छुट्टी ! अबे ओ डकैत, तू तो अच्छा भला संन्यासी था । यह तेरी अक्ल कहाँ मारी गयी ? इन आँखों के चक्कर में मत पड़ पुत्तर ! इन आँखों ने बड़े कत्ल किये हैं, कुछ मेरा भी सोच··· सोच कि हम भूखे-प्यासे तुमसे इतनी दूर से मिलने आये हैं और इस उल्लू की दुम को सूझ रहा है इश्क···। कब से खड़ा कर रखा है तूने यहाँ । बनवाऊँ 'मुर्गा' दीदी से कहकर ?'

दीदी समेत सब की खिलखिलाहट गूँज उठी वातावरण में ।

खाना खा लेने के बाद हम सब लोग दीदी के बैड रूम में आ गये ।

'अनु, पार्टी कब दे रहा है ?' उमेश ने पूछा ।

'पार्टी···किस बात की, कैसी पार्टी···?' मैंने चौंकने का अभिनय किया ।

'अबे ओ कलाकंद, सीधी तरह से मान जा, नहीं तो बुरा होगा ।'

'क्या बुरा होगा···?'

'तो ठीक है प्यारे अगर तू पार्टी नहीं देगा न, तो देख लियो तू···'

'तो···तू क्या कर लेगा ?'

'मैं क्या करूँगा···?' उमेश हाथ नचाते हुए बोला—'मैं पार्टी दे दूँगा'

यह सब कुछ इतने सहज भाव से कह गया उमेश कि हँसते-हँसते बल पड़ गये पेट में ।

'यह खूब रही उमेश !' दीदी बोली ।

अचानक उमेश को क्या सूझी कि वह फिर बहकने लगा—

'अबे ओ स्वार्थी, मैं जा रहा हूँ । मेरी बीवी भी तू अपने पास रख । हमें नहीं पालनी ऐसी दोस्ती । एक तो साले के पास इतना पैसा फूँक कर आओ बधाई देने और फिर पार्टी भी दो । सब को बेवकूफ़ समझ रखा है !'

बड़बड़ाता हुआ वह सचमुच बाहर निकल गया । भाभी, दीदी और मैं मुस्कुराते रहे ।

'अनु, ज़रा अनिल को फ़ोन करो तो ।'

'इस वक्त ?'

'हाँ, अभी वार्ड में होगा।'

मैंने डायल घुमाया—

'हैलो···अनिल···?'

'ड्यूटी ऑफ़ होते ही इधर आ जाओ, दीदी बोल रही हैं।'

'क्यों···? 'यह मुझे नहीं मालूम। आकर पूछ लेना !'

मैंने चोंगा फ़ोन पर रख दिया।

थोड़ी ही देर के बाद अनिल आ गया। इस बीच दीदी ने शरद को भी बुलवा लिया था।

'कहिए सुधा जी, आज कैसे सुध ली हमारी ?'

'भई, उमेश आया हुआ है। तुम कह रहे थे न अनु के लिए कोई पार्टी अरेंज करनी है···।'

'उमेश है कहाँ ?' अनिल ने पूछा।

'कहीं नहीं प्यारे !' उमेश के उत्तर ने सभी को चौंका दिया—'ज़रा बाज़ार तक गया था।'

'हाँ आनन्द बेटे, ज़रा मुंह खोल तो अपना·· शाबाश, ज़रा और बड़ा कर···' रसगुल्ला मेरे मुंह में ठूँसते हुए उमेश सिर को झुकाता रहा।

'भई वाह ! आज तो बड़े मौके पर आया हूँ।' तभी पाल अंकल की आवाज़ कानों में पड़ी।

'पैरी पए भापा जी', उमेश डॉ० पाल अंकल के पैरों में झुक गया साक्षात् दण्डवत की मुद्रा में। हवा में एक कहकहा तैर गया।

'लौ भापा जी, मुंह मिट्ठा करो !'

'यह किस खुशी में भई ?'

'ओ लौ जी ! मेम साब जरा, हसाब लगा के दसना जी किन्ने महीने रह गए ने अपना मुंडा होन इच ?'

रुचि ने सिर झुका लिया। एक ठहाका फिर गूँजा।

'उमेश, यहाँ तो पूरी महफ़िल लगी हुई है।' अंकल बोले।

'बारात तो पूरी है जी, बस इक कुड़ी नहीं है, नहीं तो अभी बरबाद कर देते अपने आनन्द बाऊ को।'

फिर मेरी ठोडी झिंझोड़ते हुए बोला—

'ओ डॉक्टर, जरा हस केते विखा, किते कुड़ी वाले एह न समझन कि मुंडा तां कदी हसदाई नहीं।'

हँसते-हँसते थक गया था मैं।

'उमेश, प्लीज़ स्टाप···!' मैं हँसते-हँसते उठकर बाहर निकल गया।

'उमेश, तुम कभी चुप भी रहे हो अपनी ज़िन्दगी में ?' दीदी पूछ रही थीं।

'बिल्कुल दीदी, मैं एक बार तो दो सो चौहत्तर दिन चार घंटे दस मिनट तक खामोश रहा था।'

'अच्छा ! यह दुर्घटना कब घटी भला !' दीदी ने हँसते हुए पूछा।

'हाय दीदी, शर्म आती है।' मुँह में उंगली दबाये लड़कियों की तरह उमेश लजाने का अभिनय करने लगा।

'तू बता तो सही।'

'बता दूँ···?'

'हाँ-हाँ, बोल · !'

'तीस बरस पहले, जब मैं अपनी माँ के पेट में था !' बड़ी संजीदगी से उत्तर दिया उमेश ने।

हँसी का फ़व्वारा छूट पड़ा। मैं अपने मुँह में रूमाल ठूँसे अपनी हँसी रोकने की चेष्टा करने लगा। दीदी भी मुँह में साड़ी का पल्लू ठूँसे बाहर को भागीं। रुचि घुटनों में मुंह छिपा कर बैठ गयी।

बहुत देर तक उमेश 'जोक' सुनाता रहा और सभी लोग हँस-हँस कर लोट-पोट होते रहे। देर रात गये तक यह प्रोग्राम चलता रहा···।

सुबह देर तक सोते रहे हम।

उमेश और मैं सुबह ही से मार्केट निकल गये। अपने जीवन में पहली बार मैंने किसी के लिए कुछ खरीदा—सुधा दीदी, रुचि भाभी और माधवी के लिए एक-एक साड़ी।

थक जाने पर कॉफ़ी हाऊस में चले आये। वही चिर-परिचित टेबल, वही माहौल, मैनेजर से लेकर बेयरा तक सभी उमेश को जानते थे।

वह भी सबसे यूं मिल रहा था जैसे सब उसके गहरे आत्मीय हों ! बहुत लम्बे अर्से के बाद उमेश मेरे साथ कॉफ़ी हाऊस आया था ।

'दो डोसा, दो कॉफ़ी' बैठते ही उमेश बोला ।

'अनु, एक जोक सुनाऊँ ?' इतना ऊँचा बोला उमेश कि सब लोगों का ध्यान उसने अपनी ओर आकृष्ट कर लिया ।

जोक सुनकर एक मिला-जुला ठहाका गूँज गया ।

कॉफ़ी हाऊस से निकल कर उमेश ने पूछा—

'अब कहाँ चलें अनु ?'

'झील पर चलोगे ?'

'चलो !'

पैदल चलते हुए हम झील तक पहुँचे । सुनहली धूप से झील का हल्का नीले रंग का पानी चमक रहा था। मन्द-मन्द हवा चल रही थी । झील में पानी की हल्की-हल्की लहरें उठतीं, किनारों तक पहुँचतीं और छप्-छप् करती लौट जातीं । मैंने मुट्ठी में कंकड़भर लिये । एक-एक कर पानी में फेंकता, दायरे बनते, उनका आकार बढ़ता चला जाता और तब दायरे अपनी सीमाओं को तोड़ कर खत्म हो जाते ।

'क्या सोच रहा है अनु ?'

'उमेश···' मैं खामोश हो गया ।

'अरे डॉक्टर मियाँ, आदाब !' खान की आवाज सुनायी पड़ी ।

'आदाब खान भाई, कहिए, कैसे हैं आप ?'

'अरे मियाँ, आज तो बड़ी मुद्दत के बाद दिखाई पड़े हो, कहाँ रहे इतने दिन ?'

'खान भाई, मान गये तुम्हारे यार को ! हम कामयाब रहे ।'

'खूब ! मैं न कहता था

वह खयाली है खयालात समझने वाला ।

हमसे बेहतर है वो हालात समझने वाला ।'

'हाँ खान भाई···।'

'मिया डॉक्टर, इनका तआरुफ नहीं कराया तुमने !'

खान का इशारा उमेश की तरफ था ।

'यह भी डॉक्टर हैं खान भाई, मगर हमारी क़िस्म के नहीं, किताबी डॉक्टर ! मेरे सबसे अज़ीज़ दोस्त डॉ० उमेश ।'

'उमेश, यह हैं, हमारे खान भाई, जिनका अता-पता हमें भी मालूम नहीं । इतना जानते हैं कि बाँसुरी के वादशाह हैं ।'

'भाई वाह ! यह खूब रही ।'

'खान भाई, ज़रा बाँसुरी बजाओ न, हमारे तो कान तरस गये हैं इत्ते दिन से ।'

खान बाँसुरी बजाने लगा, एक दर्द गूंजने लगा था हर तरफ़ ।

खान इतना तन्मय था कि उसे खबर ही नहीं थी उसके इर्द-गिर्द क्या हो रहा है । मैं तो सोचने-सोचते खो गया था यादों की वादियों में, कल्पना के जंगल में··· ।

'खान भाई, ग़ज़ब···! क्या बाँसुरी बजायी···' उमेश की आवाज़ भीगी-भीगी-सी थी ।

'सुनो खान भाई, मैं नहीं जानता तुम कौन हो, क्या हो, मगर मुझे तुमसे लगाव-सा हो गया है । दो दिन बाद मेरे यहाँ एक पार्टी है, वादा करो खान भाई कि तुम मेरे यहाँ ज़रूर आओगे ।'

'अरे, मुझे कहाँ घसीटते हो डॉक्टर··· ।'

'देखो खान भाई, मेरी बात नहीं मानोगे तो मैं दीदी से बोलूँगा, दीदी बहुत गुस्सा होंगी ।'

'डाक्टर बहन को नाराज नहीं करेगा खान । बोलो, किस वक्त आना है ?'

'परसों शाम ।' मैंने अपना पता लिखकर थमा दिया खान के हाथों में।

'जाने तुम्हारी आँखों में क्या है डाक्टर, हम तो इन आँखों का हुक्म टाल नही पाये ।' कहकर खान सिर झुकाता हुआ चला गया ।

दोपहर को घर पहुँचे तो देखा, मिश्रा और भाभी अंबाला से आये हुए थे । शायद सुधा दीदी ने मुझे वताये विना उन्हें रुचि भाभी से सुबह सवेरे ही फ़ोन करा दिया था ।

'अरे भाभी जी, क्या हाल-चाल हैं ?' नमस्कार करता मैं बोला ।

'अनु···।' भाभी ने माथा चूम लिया। नर्म गर्म होंठ मेरे माथे को चूमते हुए कांप रहे थे।

'भाभी, यह क्या हालत वना रखी है आपने ?'

'अरे अनु भैया, मर भी जाते तो क्या···हमारा क्या है···तुम··· तुम्हें जव देखा था तो ऐसा गहरा सदमा लगा था कि खुशकिस्मती समझो अभी तक जिन्दा हूँ।'

'यह क्या कह रही हो भाभी ?'

'वहुत कुछ सही कह रही है तेरी भाभी अनु !' मिश्रा ने मुझे अपनी वाँहों में भींचते हुए कहा—

'तू नहीं जानता अनु, तेरी भाभी तुझसे कितना प्यार करती है। रोज़ पूजा करती थी भगवान की और सवसे पहले माँगती थी तुम्हारी सफलता।'

'भाभी···!' मैं भाभी के चरणों में झुक गया था।

'अरे-रे, क्या करता है···?'

'भैया···!' यह माधवी की आवाज़ थी जो शायद दौड़कर आने के कारण कांप रही थी—

'अपना मुँह तो खोलो···!'

शायद कोई प्रसाद था जो मधु ने मेरे मुँह में डाल दिया।

'यह क्या है मधु ?'

'भैया, भाभी ने मन्नत मानी थी, उसी का प्रसाद है यह।'

'ओ···!' मैं कुछ कह न पाया।

'जाओ भैया, मुझे तो आपसे वात भी नहीं करनी थी, मम्मी ने मजवूर किया तभी आयी हूँ।' मुँह फुला लिया माधवी ने।

'क्यों क्या ग़लती हुई हमसे ?'

'हमने तो वेकार आपके लिए मेहनत की, रात दिन अपनी आँखें फोड़ीं, डॉक्टरी करते हुए भी वह खटखटिया टाइपराईटर वजाते रहे। आप इतने स्वार्थी हैं कि सफल होते ही हमें भूल गये···।'

'भाभी !' मैंने ऊँचे स्वर में भीतर की ओर देखते हुए कहा—

'ज़रा वह हरे रंग की साड़ी तो लाओ, ज़रा अपनी गुड्डू की नाराज़गी दूर कर दें।'

'मेरे लिए साड़ी लाये हो भैया ?' माधवी चहकती हुई बोली।

'साड़ी तो कुछ भी नहीं गुड्डू जी, हम तो तेरे लिए वह भी लाने वाले हैं···।'

'वह क्या···?'

'तेरे कान में बताऊँगा ज़रा मेरे पास तो आ।'

'हट भैया, बहुत मारूँगी···हाँ' और मुक्के घुमाने शुरू कर दिये थे माधवी ने मुझ पर।

'यह क्या घूँसे बाजी हो रही है मधु ?' सुधा दीदी ने मुस्कराते हुए प्रवेश किया। उनके हाथ में हरे रंग वाली साड़ी थी—'देख तो तेरे लिए कितनी बढ़िया साड़ी लाया है अनु, परी लगेगी पहन कर।'

'दीदी···' माधवी ने सुधा दीदी के आँचल में मुँह छिपा लिया।

'क्या है मधु, कुछ कहा है क्या अनु ने ?'

'भैया बहुत गन्दे हैं दीदी, मैं इनसे बात नहीं करूँगी। मुझे नहीं चाहिए साड़ी।'

'क्या कहा है अनु तूने इसे ?'

'दीदी, मैंने कुछ नहीं कहा।'

'तू बता मधु, क्या कहा है इसने, अभी इसके कान खींचती हूं।'

'सच दीदी···!' किलक पड़ी माधवी।

'दीदी···,भैया कह रहे थे···तेरे लिए वह···वह भी ढूँढा है···।' कहते-कहते लजाकर उसने सुधा दीदी की गोद में मुँह छिपा लिया।

बेतहाशा हँस पड़ीं दीदी। फिर आँखे तरेरती हुई मुझसे बोलीं—

'क्यों रे अनु, तूने ऐसा क्यों कहा ?'

'अच्छा माधवी जी, हमने आपको दूल्हा ढूँढने की बात कही, हमसे ग़लती हुई, लो कान पकड़ते हैं। अब दूल्हा तो क्या दुल्हे की दुम की बात भी नहीं करेंगे।'

'भैया···, बहुत चालाक हो, बहुत चालाक ! बातें बनाना तो कोई आपसे सीखे···।'

'मधु, तू बहुत अच्छी बहन है मेरी, ज़रा यह साड़ी तो पहन के दिखा। कैसी लगती है तू !'

'भैया, परसों पहनूँगी पार्टी में।'

वह साड़ी लेकर चली गयी थी ! मैं खड़ा-खड़ा सोचने लगा, कितना प्यार करते हैं लोग मुझे, मुझे भी तो चाहिए न कि जो खुशी, जो प्यार मुझे मिल रहा है सब समेटता चलूँ और ज़िंदगी के हर हिस्से, हर पहलू में बाँट दूँ इस प्यार को ! प्यार कितना कीमती है, आज मालूम पड़ रहा है। अगर सुधा दीदी का प्यार न होता मेरे पास तो शायद बहुत पहले अपना अस्तित्व खो बैठा होता मैं ! दीदी कितनी महान हैं, कितना कुछ खोकर भी अपने प्यार की दौलत बाँटती चली आयी हैं। बाँटने से ये प्यार की दौलत कम नहीं होती, बढ़ती चली जाती है।

'भई आनन्द बेटे, भूखा रखोगे क्या सबको ? खड़े-खड़े कहाँ खो जाते हो ? तुम्हारी तो सोचें भी थक जाती होंगी।' पाल आंटी ने मेरे सर पर ममताभरा हाथ रखते हुए कहा।

'मां…!' मेरे होंठ भर हिले, शायद आवाज़ नहीं निकली। काश, आज मेरी माँ यहाँ होतीं…काश, डाक्टरों ने उसे बचा लिया होता…! मां ने दम तोड़ते हुए भी मुझसे वादा लिया था—'बेटे अगर कुछ करना चाहता है अपने जीवन में तो डॉ० बनना, मरती हुई माँ को वचन दे दे…' माँ की आँखों में पीड़ा का तूफ़ान था।

'माँ…!' मैं इतना ही कह सका था…मैंने मरती हुई माँ को जो वचन दिया था उसी को निभाने में लगा था मैं…।

मुझे इस तरह गुम-सुम देखकर दीदी घबरा गयीं—

'क्या हुआ अनु ?'

'दीदी…जाने क्यों एकदम माँ की याद आ गयी। जब माँ दम तोड़ रही थीं तब मैंने माँ को वचन दिया था कि मैं डॉ० बनूँगा। मां आज होतीं तो कितनी खुश होतीं। माँ के पास पैसा नहीं था इलाज कराने को…मैं इतना छोटा था कि खामोश माँ को मरता हुआ ही देख सका था…।'

निगाहें उठीं तो देखा, सब चेहरे उदास हो गये थे।

बहुत गुस्सा आ रहा था खुद पर कितना भावुक हूँ। सब लोग मेरी खुशी में शामिल होने आये हैं और मैं···पागल···। मुझे तो खुश होना चाहिए था···कितना चाहते हैं सब लोग मुझे। सुधा दीदी, उमेश ···रुचि भाभी, मिश्रा भाभी···अनिल, जो मेरे बिना पलभर को नहीं जी सकता, पाल अंकल जिन्होंने पिता से भी बढ़कर प्यार दिया है मुझे। आंटी जिनका स्पर्श ही इतना ममत्वभरा होता है कि माँ का शीतल स्पर्श मालूम होता है मधु···जिसने अपना सब कुछ भुला स्नेह दिया मुझे···शरद जो हर मुसीबत में प्रकाश स्तम्भ बनकर मेरे सम्मुख खड़ा रहा···और मैं ? निहायत घटिया किस्म का आदमी, इतना सब होते हुए भी एक मृगतृष्णा के पीछे भागने लगता हूँ, जानते हुए भी कि मृगतृष्णा मंथरा की तरह कहीं समझौता नहीं होने देगी···।

तभी उमेश शायद बाज़ार से कुछ लेकर लौटा। हम सब को चुप और संजीदा देखकर बड़ी गंभीरता से बोला—

'मैं तो आ गया हूँ अनु, क्या मेरा मातम मना रहे थे तुम लोग, देखो भई मैं सही सलामत हूँ···।' वह बोले जा रहा था।

सुधा दीदी ने लपक कर उमेश के मुँह पर हाथ रख दिया। शायद दीदी को यह डर रहा होगा कि उमेश की बातें मेरे घाव कुरेद सकती हैं।

'दीदी, आप तो पूरी डिक्टेटर हैं···मैं नहीं बरदाश्त करूँगा यह जुल्म ! हमारे संविधान में बोलने का पूरा-पूरा अधिकार है और यह हमारा मौलिक अधिकार है, मैं इसके लिए आपके विरुद्ध अभियान छेड़ूँगा···तो, भाइयो ! और एक को छोड़कर बहनो और भाभियो···।'

सब के चेहरों पर छायी उदासी काफूर हो गयी, हल्की-सी हँसी सब तरफ़ गूँज गयी।

'अरे भाई लोगों, इसमें हँसने की क्या बात है, मेरी बीवी को भी मेरी बहन बनाओगे क्या ?' इतना मासूम चेहरा बना रखा था उमेश ने कि सबके सब फिर हँसने लगे।

'आप लोग हँसते ही रहेंगे या मेरी बात भी सुनेंगे ? कृपया शांति

का दान दीजिए···शान्ति बिलासपुर वाली नहीं···वह साली पागल है, शांति मेरा मतलब है खामोशी···।'

हँसते-हँसते खांसने लगा था मैं।

'तो मैं आपसे कह रहा था कि मैं यानि कि मैं जो डॉ० उमेश हूँ, सुधा दीदी के विरुद्ध धरना दूँगा···भूख हड़ताल करूँगा···।'

'वैसे भूख बड़े ज़ोर से लगी है' गरजते हुए भाषण में यह अन्तिम वाक्य बड़े धीमे स्वर में कहा गया जैसे किसी पुराने नाटक का स्वगत कथन···। अपने स्वर को फिर पहले जैसा ऊँचा करते हुए उमेश बोलने लगा—

'तो मैं कह रहा था, मैं भूख हड़ताल करूँगा ··और तब तक भूखा रहूँगा जब तक··।' अचानक चुप हो गया उमेश।

'कब तक भूखे रहेंगे आप···?' श्रोताओं में से एक ने प्रश्न किया वक्ता से।

'तब तक···' उमेश हवा में मुक्का तानता हुआ बोला—'जब तक खाना टेबल पर नहीं लग जाता।' और फिर उसने हवा में तना हुआ मुक्का मेज़ पर दे मारा।

कहकहों और तालियों का शोर गूँज उठा सारे फ़्लैट में।

दोपहर का खाना खाते-खाते तीन बज गये।

तभी शरद ने प्रवेश किया।

'भैया आपका एक मैसेज है मेरे पास···।'

'क्या···?'

'आपको डॉ० चौधरी ने बुलाया है अभी···?'

सुधा दीदी और मैंने छुट्टी की अर्ज़ी सुबह ही भिजवा दी थी, इसलिए यह बुलावा अजीब-सा लगा। फिर भी मैंने उठते हुए कहा—

'मैं अभी होकर आता हूँ शरद, तुम भी इन सबके साथ गप्प लगाओ।'

ब्लड बैंक पहुँचा तो डॉ० चौधरी मेरा इन्तज़ार कर रहे थे।

'हैलो चौधरी, क्या हुआ ?'

'भाई अनु, तुम्हारे बिना ये ब्लड बैंक बड़ा बोर लगता है।'

'कुछ खास बात है ?'

'तुम्हारे इन्ट्रैस्ट का एक केस आया है वार्ड नं० चौदह में।'

'कौन से बैड पर ?'

'डॉ० हरजीत के यूनिट में है, बैड नं० शायद सात है, देख लो उसे।'

'ओ. के.' कहकर मैं वार्ड नं० चौदह में चला गया।

'ओ भापे ! तू कहाँ···सुना था छुट्टी पर है ?' डॉ० हरजीत बाहर ही खड़े थे।

'हैलो सर।' अपने दोनों हाथों में डॉ० हरजीत का हाथ थामते हुए मैंने कहा।

'यार आनन्द, तुम हमें सर-वर तो कहा मत करो, बहुत शर्म आती है तेरे मुँह से यह सुनकर।'

'डॉ० साहब, ल्यूकुमिया का पेशेंट आया है कोई ?'

'हाँ हाँ, यस···मैंने चौधरी से कहा था···।'

'उसी ने भेजा है मुझे।'

'देखोगे क्या ?'

'हाँ···।'

'चलो।'

कदम-कदम चलते हम उस मरीज़ के सामने आ गये।

'यह देखो इसकी हिस्ट्री।'

'फाइल के पन्ने पलटते हुए न सिर्फ मेरी निगाहें काँप रही थीं बल्कि तमाम जिस्म काँपने लगा था। फाइल पटक कर मैं वार्ड से बाहर आ गया।'

'क्या है डॉ० आनन्द ?'

'डॉ० साहब, इसमें देखने को रह ही क्या गया है, यह तो गया··· आज नहीं तो कल बस···।'

डॉ० हरजीत भी संजीदा हो उठे थे।

'अच्छा सर, मैं चलूँगा···परसों शाम याद रखिएगा।'

'लो, इसमें याद रखने की क्या बात है ? हम तो भई बिना बुलाये

ही आने वालों में हैं ।'

लौटते-लौटते शाम घिर आयी थी । हॉस्पिटल का वातावरण बड़ा दमघोटू था । एक अजीव तरह की कसैली-सी गन्ध फैली हुई थी जिसमें सिगरेट का धुआँ भी तैर रहा था,...लाख मना करने के बाद भी लोग मानते नहीं ।

एक सन्नाटा-सा व्याप्त था । वातावरण में बड़ी गम्भीरता छाई हुई थी ।

धीरे-धीरे अंधकार छाने लगा था । स्ट्रीट लाइटों के वल्व जलने लगे थे । हवा में बहुत हल्की ठंडक अब भी थी जो बहुत भली लग रही थी । मैं सोचने की कोशिश से बचता हुआ घर की तरफ़ बढ़ा जा रहा था । घर पहुँचा तो अपने होंठों पर एक बनावटी-सी मुस्कराहट पोत चुका था ।

'वहुत देर लगा दी अनु ?' उमेश जैसे इन्तज़ार में था ।

'हाँ उमेश, जानते हो कई दिन के बाद अन्दर वार्ड में गया था, कई लोग मिल गये, बस निकलते-निकलते देर हो गयी ।

तभी माधवी, पाल अंकल और आँटी ने प्रवेश किया ।

'देखो भैया, हम आपके लिए क्या लाये हैं ?' मधु की आवाज़ बच्चों की तरह किलक रही थी ।

'क्या लायी है मधु...देखें तो...?'

'ऐसे नहीं भैया !'

'तब...?'

'पहले आँखें बन्द करो ।'

'लो भई, हमने आँखें बन्द कीं...।'

'अपना हाथ हमें दो भैया !'

मैंने हाथ बढ़ा दिया ।

'अब देखो भैया ।'

'अरे वाह मधु, यह तो वहुत खूबसूरत घड़ी है !'

'भैया, इसमें अलार्म भी लगा है, जब तक आप उठेंगे नहीं तब तक सुईयाँ चुभती रहेंगी । दीदी कहती हैं अनु को उठाने के लिए ढोल

पीटने पड़ते हैं।'

इस बीच चाय आ गयी। उमेश के लतीफ़ों का टेप फिर शुरू हो गया और कहकहे गूँजने लगे।

अगला दिन भी इसी चहल-पहल में बीत गया।

पार्टी के दिन सुबह ही से घर मेहमानों से भरने लगा। खान भाई भी जल्दी आ गये।

'आदाब डॉक्टर बहन !'

'अरे खान भाई, आप ?' दीदी की आँखें आश्चर्य से फैल गयीं।

खान भाई बोले—

'हमको यूँ हैरत से क्या देखती हैं आप
हम भी इन फिजाओं के पाले हुए तो हैं
क्या हुआ भटक रहे हैं जिन्दगी के जंगल में हम
यहाँ के न सही, यहाँ से निकाले हुए तो हैं।'

'अरे वाह खान भाई···?' मैंने लपककर सलाम बजाई और कहा—

'भीतर चलिए खान भाई !'

हम तो खुली हवा के जीने वाले हैं डाक्टर, इन कबूतरखानों में अपना दम निकलता है। अपन तो चचा जान ग़ालिब के पक्के शागिर्द हैं, बेदरो दीवार के मकान में रहने वाले।

खान सचमुच दीवार से पीठ टिकाकर बैठ गया।

इंतभार के क्षण खत्म हुए···सांझ ढल आयी। शामियाना मेहमानों से भरा हुआ था, अनिल, उमेश, शरद···मिश्रा···चौधरी, पाल अंकल सब व्यस्त थे, किसी को एक क्षण की भी फ़ुर्सत नहीं थी।

छत पर खड़ा मैं देख रहा था, खुशी से आंखों में आँसू भर-भर आते थे और लगता था हवा हो गया हूं मैं।

जाने क्या-क्या सोचता रहा मैं। सब कुछ चलचित्र-सा लग रहा था। जीवन भी क्या तमाशा है धूप-छाँव का। कभी दुःखों की चिलचिलाती धूप है तो कभी सुखों की शीतल छाया और समय है कि अपनी रफ्तार से चलता ही रहता है। न सुख की परवाह, न दुःखों का ग़म,

समय सनकी फ़कीर है। समय की खूबी भी यही है कि रुकता नहीं, निरन्तर चलता रहता है, जो लोग समय की परवाह नहीं करते समय उनकी भी परवाह नहीं करता। समय के समक्ष किसी की नहीं चलती ··।

'ओ भैय्या के बच्चे···। कहाँ समाधि लगाये हुए हो ? सब लोग ढूँढ रहे हैं आपको और आप···' मधु बहुत गुस्से में थी।

'हाँ चलो चलो, मैं तैयार हूँ।'

'तैयार हूँ··· । सूरत तो देखो अपनी, और ये कपड़े···जोकर लग रहे हो पूरे। जल्दी से तैयार हो जाओ नहीं तो मुक्के मार-मार कर भुर्ता बना दूँगी।'

'तू मुझे बुलाने आयी है कि लड़ने ?'

वह बिना कुछ बोले मेरी बांह पकड़ कर मुझे घसीट ले चली।

हरे रंग की साड़ी में बहुत सुन्दर लग रही थी वह।

'मैं अपने कमरे में गया और तैयार होने लगा।'

'वाह बेटा ! तूने तो छोकरियों को भी मात कर दिया। अभी तक तैयार ही नहीं हुआ ?'

उमेश का अपना अंदाज़ था।

'हो तो रहा हूँ तैयार···।'

'ले पकड़, यह टाई भी बांध ले।'

'टाई···? मैंने तो आज तक बाँधी नहीं और यह गलफाँसी मैं सह भी नहीं पाऊँगा।'

'देख अनु, पहननी तो पड़ेगी, वर्ना तेरी भाभी नाराज़ हो जायेगी और मैं जानता हूँ तू ऐसा नहीं चाहेगा।' उमेश टाई की गांठ बांधते हुए बोला।

'अच्छा बाबा···।'

'हाय अनु, क्या स्मार्ट लग रहा है ? क्या कातिलाना आंखें हैं तेरी ···हाय···रे,

इस सादगी पे कौन न मर जाये ऐ खुदा।
करते हैं कत्ल हाथ में तलवार भी नहीं।

'अरे ओ अनु, क्या कर रहा है तू अभी तक ?' दीदी ने पुकारा।

'अरे दीदी, जरा काजल का टीका लगा दो अनु को, क्या डैशिंग लग रहा है ?'

मैं उमेश और दीदी के साथ बाहर आ गया, जहाँ सब लोग जमा थे। हमारी रक्त-दान सोसायटी के लोग भाग-भाग कर लोगों की सेवा में लगे थे।

'लो आ गये आज के हीरो।' मुझे देखते ही रुचि भाभी ने चुटकी ली।

'अरे संन्यासी ! तू इतना खूबसूरत है, हमें मालूम ही नहीं था।' मिश्रा ने फबती कसी।

और मैं भीड़ से घिरा उसी में खो गया।

जाने किस कोने से खान की बांसुरी का स्वर धीरे-धीरे पंडाल में तैरने लगा था, सभी एक-टक उसी ओर देखने लगे और वाह-वाह करने लगे···।

लगता था बांसुरी की धुन ने जादू-सा कर दिया था सब पर।

धुन खत्म हुई तो दीदी खान के पास जाकर बोलीं—

'खान भाई, वह सुनाओ न

'वह खयाली है खयालात समझने वाला।'

'जो हुक्म डाक्टर बहन।'

और खान की सोज़दार आवाज़ समां बांधने लगी। सिर झूमते और पैर थिरकते रहे काफी देर तक।

ग़ज़ल खत्म होते ही खान के कदम बाहर की ओर बढ़ गये।

'क्यों खान मियाँ···।' मैं उसकी ओर लपका—'खाये बिना ही···?'

'तुम तो जानते हो डॉक्टर मियां, हम एक जगह ज्यादा रुकते नहीं। आपका प्यार खींच लाया था। याद रखना डाक्टर मियां, शोहरत एक मीठा ज़हर है, बचकर रहना इससे।'

खान चला गया मगर पीछे छोड़ गया था एक जलता हुआ सवाल, एक नसीहत जो बहुत असरदार थी और बहुत ही वज़नदार।

इसके बाद मधु ने सितार संभाली। उसकी अंगुलियाँ तारों पर

थिरकने लगी और साथ ही यह रस-भीनी गजल—

हमारे बाद अंधेरा रहेगा महफ़िल में···,
'बहुत चराग़ जलाओगे रोशनी के लिए'

हर शे'र के बाद तालियाँ बज रही थीं।

अब माइक संभाला उमेश ने—

'भाइयो और मेरी घरवाली को छोड़ कर बहनो, भाभियो और माताएँ हो तो···।' लोगों की हँसी में उमेश का स्वर डूब गया।

हँसी की गूँज कुछ हल्की पड़ने पर उमेश बोला—

'मैं अब अनिल जी से प्रार्थना करूँगा कि वह कुछ प्रार्थना करें।'

अनिल ने एक गीत गाया···आशा और विश्वास भरा गीत···।

फिर दौर शुरू हुआ उमेश के चुटकुलों का। लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो रहे थे। हर तरफ़ उमेश की चर्चा थी···उमेश है ही ऐसा, जहाँ होता है, छा जाता है।

इस बीच में न जाने कब मिश्रा ने उमेश के हाथ से माइक खींचकर घोषणा कर दी—

'अब मैं आज के हीरो डॉ० आनन्द को आप सब लोगों की तरफ़ से रिक्वैस्ट करूँगा कि अपनी नज्म सुनाएँ···एकदम नयी···ताज़ी···।'

'नहीं···।' मैं धीरे-से बुदबुदाया—'मेरे पास तो सब बासी हैं।'

लेकिन मेरा बुदाबुदाना शायद तालियों के शोर में डूब गया। उमेश और अनिल मेरे दोनों बाज़ू थाम कर माइक के पास ले आये। मैंने सिर झुकाये धीरे-धीरे, रुक-रुक कर बोलना शुरू किया—

'तुमने ख्वाब देखे हैं अब तक,
और आज हकीकत की चुभन से तड़पते हो?
जो है, उससे नफरत है तुम्हें
जो नहीं है, उसके लिए तरसते हो।
जो तुम्हारे इख्तियार में नहीं
क्यों तुम उसके पीछे पड़े?
जो नहीं है वही चाहिए तुम्हें
जो है उससे यों दूर खड़े हो।

तुम···तुम मत देखा करो कोई ख्वाब
नहीं किसी सवाल का उसमें जवाब ।
कभी-कभी हालात से लड़ना पड़ता है,
और कभी तनहाइयों से गुज़रना पड़ता है
कभी करने होते हैं हालात से दो-दो हाथ
और कभी समझौता भी करना पड़ता है ।
मगर···तुम···?
तुम तो हमेशा ज़िंदगी से रहे बेवफ़ा ।
घर आये मसीहाओं को ठुकरा कर
मंदिरों में, कावों में, गिरिजाओं में जा-जाकर
बेजान बुतों की करते रहे पूजा ।
वक्त किसी का मोहताज नहीं होता,
वक्त न ग़रीब है और न ही है वह अमीर ।
वक्त न किसी का दुश्मन, न है दोस्त किसी का,
वक्त तो है बस इक सनकी फ़कीर ।
वक्त न झुकता है,
न रुकता है,
सब छोड़ता चला जाता है
सब तोड़ता चला जाता है ।
क्यों न इससे हम सीखें यह सबक ।
खुद जीना औरों को जिलाना भी है हक़ ।
कभी ग़ौर करो, सोचो, विचारो मेरे यार,
उस हक को निभाया है हमने कहाँ तक ।'

नज़्म पूरी होते ही पंडाल में तालियाँ गूँजने लगीं । पाल अंकल पीठ थपथपाते हुए बोले—

'अरे डॉक्टर, क्या कमाल किया है तूने···तू तो बहुत अच्छा शायर है···हमें मालूम ही नहीं था ।'

सबकी बधाइयाँ लेता रहा मैं।

'तो भाइयों और एक उस बेचारी को छोड़कर जो मेरे पल्ले बँधी है, बहनों और भाभियो !' उमेश फिर अपने रंग में आ गया—ग़जल और कविताओं से पेट तो आप सब का भर गया होगा, अब हाज़मे के लिए बेचारे टेबल आपकी इंतज़ार कर रहे हैं···आइये, आगे बढ़िये···प्लीज़ ···नो फारमेलिटी प्लीज़···।'

सब हँसते हुए खाने की ओर बढ़े।

रात ढल चली थी···

सब जा रहे थे···

रह गये थे हम···

वही कुछ थोड़े से चिर-परिचित चेहरे···

'तूने तो कुछ भी नहीं खाया होगा अनु ?' दीदी पूछ रही थीं।

'यहाँ तो पेट में ज़रा भी जगह नहीं···।'

'झूठ··· ।'

'सच दीदी, बिना कुछ खाये ही भूख खत्म हो गयी है मेरी।'

'अच्छा ! तो बुलाऊँ उमेश को ?'

मुझे चुपचाप दीदी का साथ देना पड़ा।

थके होने के कारण सब जल्दी सो गये थे, एक मैं ऐसा अकेला व्यक्ति था जो जाग रहा था ! जाने क्यों नींद ही नहीं आयी मुझे !

मुझ पर रात से ही एक भय हावी हो गया था। उमेश को कई बार लड़खड़ाते देखा था मैंने ! शारीरिक रूप से बहुत कमज़ोर पड़ गया था वह। शायद ही कोई अनुमान लगा सकता हो उमेश के बारे में ! बहुत लम्बा वक्त निकाल गया है उमेश ! मुझे बहुत हैरत हो रही थी !

शायद यह सब आत्मविश्वास का नतीजा है !

रात का अन्तिम पहर था। चाँद ढलने लगा था। चाँदनी मुर्दा पड़ी थी ! थक-हार कर मेरे कदम खामोश पड़ी सड़क पर बढ़ गये। जाने कहाँ तक पैदल चलता रहा था मैं······शायद बहुत दूर निकल गया था।

जब लौटा तो सवेरा होने को था !

'कहाँ था अनु, तू ?' उमेश पूछ रहा था। मिश्रा भी उसके साथ था। शायद सैर को निकले थे।

'सैर करता काफ़ी दूर तक निकल गया था' आलस से भरी आवाज़ थी मेरी।

'घर जा, दीदी जाग रही हैं, बेकार चिन्ता कर रही होंगी। पता नहीं तू क्या सोचता रहता है। क्या सारी दुनिया के सोचने का ठेका तूने ही ले रखा है ?'

'मुझसे कोई जवाब न बन पड़ा।

'जा भी, अब मुझे क्यों घूर रहा है।' खीझकर बोला उमेश।

घर पहुँचा तो गेट पर ही खड़ी थी सुधा दीदी, साथ खड़ी थी मधु।

'दीदी आपके लाडले भैया लौट आये हैं।' मधु बोली।

'कहाँ था रे तू ?' गुस्सा था आवाज़ में।

'नींद खुल गयी थी, ज़रा सैर को निकल गया।'

'बोल तो जाता।'

'किसे बोलता ? सब तो बेसुध सो रहे थे।'

'तू कैसा उल्लू है ? तुझे न दिन को नींद आती है न रात में !'

'चल अब अन्दर कि यहीं खड़ा रहेगा !'

मैं खामोशी से भीतर चला गया !

तभी मिश्रा की आवाज़ सुनायी पड़ी—

'अरे अनु, देख तो उमेश को क्या हो गया है ?'

'क्या हुआ ?' मैं बाहर भागा !

'उमेश बेहोश पड़ा था। सांसें तेज़-तेज़ चल रही थीं।

'दीदी, ज़रा बी० पी० अप्रेटस लाओ।' बी०पी० एकदम बढ़ गया था। सीडेशन देने के बाद हम लोग उमेश को केजुअलटी ले गये। डॉ० पाल ने उमेश का 'चैकअप' किया तो बहुत बेचैन हो उठे।

'अंकल, उमेश का हीमोग्लोबिन बहुत लो है। शायद ट्रांसफ्यूज़न देना पड़ेगा !'

'अनु, इसकी हिस्ट्री मालूम है तुम्हें !'

'अंकल···आई नो ईच एण्ड एवरी थिंग !'

ट्राँसफ्यूज़न दिया जा रहा था। ताज़ा खून चाहिए था जो उस वक्त अनिल ने दिया। तब शरद से मैंने कहा था—'शरद, आज तक तो हम दूसरों के लिए खून इकट्ठा करते रहे हैं। आज हमें अपने उमेश के लिए चाहिए।'

एक-एक बूंद खून उमेश के शरीर में प्रवेश कर रहा था··। जिस बात का भय मुझे रात हो रहा था वही साकार हो गयी।

भाभी मेरे सम्मुख खड़ी थीं। उनकी आंखें बहुत कुछ पूछ रही थीं। मैं सह नहीं पाया उन आँखों को, कैजुएलटी से बाहर निकल गया। मगर तब भी लग रहा था कि वे आँखें पीछा कर रही हैं मेरा।

स्पैशल वार्ड का एक कमरा उमेश के लिए बुक करा लिया गया। इस नाज़ुक स्थिति में उमेश को घर नहीं ले जाया जा सकता था। कल के उमेश और आज के उमेश में युगों-युगों का अन्तर महसूस हो रहा था। वे होंठ जो सदा चुटकुलों की फुहारें छोड़ते रहते थे, इस समय खामोश थे। आँखें जो इशारों में बातें करती थीं, मुँदी थी।

उमेश का भविष्य···

एक प्रश्न ?

जिसका उत्तर मालूम है मुझे, जो स्पष्ट है।

'अनु······!' ठिठक गया मैं। सुधा दीदी की कांपती आवाज़ थी।

'जी।'

'यह सब क्या हो गया अनु ?'

'वही दीदी, जो होता है और जो नहीं होना चाहिए था !'

'उमेश को होश आ गया है। तुझे बुला रहा है, जा तू उसके पास।'

थके-थके कदमों से लौट पड़ा था मैं। उमेश के पास पाल अंकल खडे थे, माधवी थी। रुचि भाभी भी खड़ी थीं।

'अनु, कहाँ गया था यार तू ?'

'मैं यहीं था उमेश, तेरे लिए ब्लड अरेंज कर रहा था।'

'मेरे शरीर में मत डाल यह खून अनु, मेरे भीतर दीमक लग गया है। अभी बीस पच्चीस दिन पहले ही तो खून चढ़ा था।'

'उमेश, तू चुप रह और मेहरबानी करके अपनी नसीहतें अपने पास रख। मुझे मालूम है क्या करना है।'

'अंकल ! वार्ड में शिफ्ट कर दें न इसे ?' मैंने पूछा।

'हाँ···' पाल अंकल कहीं खो गये थे।

तभी डॉ० श्रीवास्तव ने प्रवेश किया।

'आइये सर !' मैंने कहा।

काफ़ी देर तक पढ़ने की कोशिश करते रहे डॉ० श्रीवास्तव उमेश के शरीर को !

'हूँ···इसे शिफ्ट कर दो वार्ड में।' श्रीवास्तव बोले।

उमेश को ले जाया जा रहा था ! मैं ब्लड बैंक की ओर बढ़ गया।

डॉ० जैन सामने के कमरे में बैठे थे। यहाँ भी उमेश की चर्चा थी। आग की तरह यह खबर फैल गयी थी कि उमेश को कुछ हो गया है।

'हैलो अनु, कैसा है उमेश ?' डॉ० जैन पूछ रहे थे।

'कुछ कहा नहीं जा सकता अभी···।'

मैं कुर्सी पर बैठा विचारों में खो गया था। अपना पूरा विवेक, अपना पूरा ज्ञान, अपनी तमाम शक्ति लगाकर मैं उमेश के लिए कुछ करना चाहता था। मगर हर तरफ़ बेबसी ही बेबसी नज़र आ रही थी।

कितना बंध गया था मैं हालात की ज़ंजीरों से और जाने क्या-क्या सोचता रहा था मैं। शायद सोचता रहता अगर सुधा दीदी और रुचि भाभी नहीं आ जातीं।

'अनु भैया, आपको याद किया जा रहा है !' भाभी ने कहा।

'होश में है न।'

'भैया, आप होश की बात करते हैं। वहाँ तो महफ़िल लगी हुई है। उमेश चुटकुले सुना रहा होगा।' भाभी की आवाज़ आँसुओं में भीगी हुई थी।

स्टैथोस्कोप गले में लटकाकर मैं स्पेशल वार्ड की तरफ़ चल दिया। उमेश के कमरे के बाहर ही से कहकहों की आवाज़ आ रही थी।

मेरी आँखें भीग आयीं···कितना हौंसला है इस लड़के में जो ज़िन्दगी और मौत से वेपरवाह अपने में मस्त है !

'आओ वेटे अनु, कहाँ गए थे तुम ?' उमेश ने पूछा ।

मुझसे कोई जवाब न वन पड़ा ।

'अवे, वोलता क्यों नहीं ?'

'यहीं था उमेश, तू तो चुटकुलों में खोया हुआ था, तुझे क्या मालूम···।'

'अनु, तू जा यहां से और मेरी रिहाई का प्रबंध कर ।'

'नहीं उमेश, अभी तुझे यहीं रहना होगा ।'

'अनु, मैंने तो ख्वाव में भी कभी तेरा बुरा नहीं चाहा और एक तू है मुझे इस जेल में पड़े रहने की हिमायत कर रहा है । शर्म आनी चाहिए तुझे !'

'मधु, चल चलते हैं ! यहाँ रहूँगा तो यह बकबक करता रहेगा। सिस्टर ! अगर यह ज्यादा बकवास करे तो इसे 'सैडेटिव' दे देना ।'

मैं मधु के साथ वाहर आ गया ।

'भैया···उमेश भैया को क्या तकलीफ है ?'

'मधु, वह···वह उस मरज़ का मरीज़ है···जो···'

'नहीं···!!' चीख पड़ी थी वह ।

'मधु, जो है उसे कौन टाल सकता है ?'

'भैया, उमेश को मालूम है क्या ?'

'हाँ मधु, दोनो को मालूम है, रुचि भाभी को भी !'

कोई कुछ नहीं बोल सका था। हम दोनों खामोश थे ।

सारा दिन उधेड़ बुन में बीत गया ।

रात में मुझे उमेश के पास रहना था ।

दस बजे के करीब मैं उमेश के कमरे में गया । अनिल और मिश्रा वहीं थे । अनिल और मिश्रा के चले जाने के वाद मैंने अपना वैड लगाते हुए उमेश से कहा—

'उमेश, रात बहुत हो गयी है सोने की कोशिश करो ।'

'अनु यार, अब सोने के दिन गये···अब मुझे कुछ दिन जागते रहने

दो, फिर तो सोना ही है !'

'क्या वक्त रहा है···?'

'वक्त नहीं रहा, सही कह रहा हूँ अनु···।' उदास हो गया था उमेश !

'उमेश···!' मैं इतना ही कह सका।

'अनु, तुमसे एक वात कहनी है।'

'क्या···?'

'मेरे वाद रुचि को सम्भाल कर रखोगे, वादा करो मुझसे।'

'उमेश···!' मैं चीख पड़ा था।

'अनु···चीखो नहीं यह हॉस्पिटल है, हमारा घर नहीं इधर और भी मरीज़ हैं। वोलो अनु, मेरी रुचि को सम्हाल लोगे !'

'उमेश···!' मैंने उमेश के दोनों हाथ थाम रखे थे—

'रुचि भाभी को मैं जितना प्यार करता हूँ, उमेश···और क्या कहूं···' मेरी आँखें भीग आयी थीं !

'अनु, एक वात वता।'

'क्या···?'

'एक मिनट को यह सोच ले कि मैं उमेश नहीं हूँ और एक साधारण मरीज़ हूँ जिसे कोई नहीं जानता···और तव वता मेरी हालत क्या होती ?'

'उमेश, यह सब व्यवस्था का प्रश्न है ! वड़े-वड़े हस्पताल तो वड़े लोगों के लिए हैं ! यहाँ आकर इलाज कराना हो तो या तो जानपहचान होनी चाहिए या फिर पैसा, वर्ना एक आम मरीज़ तो मर जाय तब भी कोई परवाह न करे।'

'विल्कुल ठीक अनु, तुम सही सोचते हो, कभी कुछ करने की नहीं सोची तुमने !'

'वहुत सोचा है उमेश, और तुम जानते ही हो कि मैंने कुछ करने की कोशिश की तो कितनी वड़ी सज़ा भुगती है !'

'लेकिन अनु···उसी सज़ा ने तुम्हें इतनी वड़ी कामयावी भी दी है !'

'हां···यह तो है···'

'सोचो अनु, उस आम मरीज़ के बारे में जो इन हस्पतालों में बड़ी-बड़ी आशाएं लेकर आता है और तब यहाँ आकर उसे एक-एक सांस के लिए संघर्ष करना पड़ता है। अगर तुम सब लोग मेरे अपने नहीं होते तो डॉ० उमेश कब का मर-मरा गया होता···है न!'

'उमेश, ये समस्याएं केवल सोचने ही से तो हल नहीं होतीं।'

'यही तो मैं कह रहा हूँ अनु···कुछ करो···! कभी तुमने मुझसे अपना ब्लड बैंक खोलने का ज़िक्र किया था, उसका क्या हुआ?'

'उमेश···पैसा···! समस्या सारी फाइनेंस की है। और दीदी इस कोशिश में है कि कुछ पैसा जमा हो जाय···तब सोचेंगे! यों तो विनोद ने काफ़ी पैसा भेजा है कनाडा से, मगर फिर भी अभी पर्याप्त नहीं है!'

'अनु, वह···वह है न तुम्हारा कलाकार अंकल, उनकी मदद लो, कुछ शो लो उनसे···।'

'मेरे दिमाग में भी यही प्लानिंग है। अभी अंकल बम्बई गये हैं। लौट आयें तब बात करूँगा।'

'अनु, कुछ पैसा मेरे पास भी जमा है···जब चाहो ले लेना···।' उमेश बड़े सहज स्वर में कह रहा था—'अपने लिए तो हर कोई जीवन जीता है मगर तुम्हें तो औरों के लिए जीना है। भगवान तुम्हें कामयाबी दे। अच्छा···अनु, अब सो जाओ···मुझे भी नींद आ रही है!'

उमेश शायद सो गया था लेकिन मैं जाग रहा था। अँधेरे की गहरी चादर में सब डूबा हुआ था। और मैं इस गहरे अँधेरे में कुछ खोज रहा था···एक प्रश्न का उत्तर···प्रश्न जो अन्ध कुएँ सा था और लगा कि अँधेरा और गहरा गया है।

जाने कब थककर सो गया था मैं।

'मधु, मेरा नाश्ता भी टिफ़न में डाल दो, उमेश के साथ ही कर लूंगा।'

मधु टिफ़न बंद करके दे गयीं।

टिफ़न लेकर मैं उमेश के कमरे की तरफ़ बढ़ गया।

मेरे हाथों में टिफ़न देख उछल पड़ा उमेश।

'अनु, मैं रुचि से कह रहा था कि आज मूली के पराँठे खिला दो, बहुत मन कर रहा है, दही भी साथ हो तो लुत्फ़ ही आ जाये…'

'उमेश, मूली के परांठे खायेगा…?'

'अवे यार, आज तू खिला दे, फिर तो क्या खवर…।'

'ले, तेरे लिए मूली के परांठे ही लाया हूँ और दही भी…।'

'वैरी गुड अनु, तू मेरी तमाम आखिरी इच्छाएँ पूरी कर रहा है, तू वहुत अच्छा है…।'

'उमेश, अगर बकवास करेगा तो उठा कर बाहर फैंक दूँगा तुझे।'

'ऐसा मत करना अनु, मुझे तो वैसे ही मरना है, तू नाहक कातिल कहलायेगा।'

'फिर वही बकवास…' मैं झल्ला उठा।

'तू जा अनु, तेरे राऊण्ड का वक्त हो गया है और मुझे भी नाश्ता करना है।'

मैं बाहर आ गया…। कैसा है यह उमेश, अपनी मौत की बात भी यों मज़ाक में टाल रहा है…। कोई और होता तो कब का रेंग-रेंग कर मर गया होता।

'हैलो सर…किस सोच में खोये हुए हैं?' सामने शरद था।

'हैलो शरद, कहाँ जा रहे हो?'

'उमेश भैया के लिए ब्लड तो नहीं चाहिए अभी?'

'नहीं शरद, दोपहर बाद किसी को भेजना, शायद शाम तक और ज़रूरत पड़ेगी।'

शरद आगे बढ़ गया और मैं वार्ड की तरफ़!

राउण्ड लेने के वाद मैं सिस्टर मीरा के साथ स्पेशल वार्ड की तरफ़ बढ़ गया।

'सिस्टर, आइये अपने मरीज़ को भी देख लें!' उमेश लेटा हुआ था, जाने किन यादों में खोया हुआ, दरवाज़ा खुलने की आहट से चौंका।

'आओ अनु, हैलो सिस्टर जी।' वह उठकर बैठ गया।

कैसे हैं उमेश जी आप ?'

'सिस्टर, जब तक जीवित हूँ जीवित ही रहूँगा।' कहकर मुस्करा दिया वह।

'लेटो उमेश, तुम्हारा ब्लड प्रेशर चैक कर लूँ।'

'अभी-अभी तो दीदी चैक करके गयी हैं।' उमेश ने जवाब दिया—'और हाँ, कोई डॉ॰ घोष भी आये थे।'

'डॉ॰ घोष, लम्बे से, सांवले से, ऐनक लगाए···?'

'हाँ-हाँ, बिल्कुल वही। कह रहे थे, डॉ आनन्द का टैलीग्राम मिलते ही चल दिया था।'

'सिस्टर, आप वार्ड में चलिए। मैं डॉ॰ घोष से मिलकर आऊंगा।'

तेज़ कदमों से मैं घर की ओर चल दिया।

ड्राइंग रूम में डॉ॰ घोष, अनिल, सुधा दीदी और मधु बैठे बातें कर रहे थे।

'हैलो सर···कैसे हैं आप ?'

'बिल्कुल ठीक, अपनी सुनाओ आनन्द, तुम्हारा टैलीग्राम मिलते ही मैं चल दिया था, अपनी गाड़ी थी, जल्दी पहुँच गया ! हाँ कैसे याद किया मुझे ?'

'मरीज़ तो देख चुके हैं आप, उमेश के लिए ही बुलाया था मैंने।'

'आनन्द, बड़ी हैरत की बात है कि वह अभी तक ज़िंदगी की गाड़ी खींच रहा है।'

मैं खामोश हो गया, अब पूछने को रह ही नहीं गया था कुछ।

डॉ॰ घोष मुझे अपने साथ बाहर ले आये।

'क्या खयाल है तुम्हारा आनन्द ?' डॉ॰ घोष ने सवाल किया।

'सर, मैं समझता हूँ, चार पाँच दिन का ही मेहमान है, किसी भी क्षण कुछ भी हो सकता है।'

'आनन्द, एक बात मानने की है, बहुत बहादुर है यह लड़का। मैंने अपनी ज़िन्दगी में ऐसा दिलेर नहीं देखा कभी।'

'सर, उमेश तो मौत को भी 'जोक' सुना सकता है, इतनी हिम्मत

है उसमें ।'

'ओ. के. आनन्द मैं चलूँगा ।'

'कहाँ···?'

'वापिस देहली ।'

'अभी तो आये हैं सर, दो चार दिन रुकिये न !'

'नहीं आनन्द, यहाँ रुकना मुमकिन नहीं । कुछ उम्मीद होती तो मैं ठहरता भी ! वैसे भी वहाँ आजकल काम बहुत है ।' मेरी ज़रूरत हो तो फ़ोन कर देना ।'

'जैसा आप उचित समझें···' इतनी ही कह पाया मैं ।

अन्दर आकर कुछ कहने जा ही रहा था कि फ़ोन की घण्टी बजी ।

'हैलो··आनन्द हियर ।'

'कौन चौधरी हाँ···कहो ।'

'क्या रिपोर्ट है···?'

'कितना···?' पाँच ग्राम है हीमोग्लोबिन···?'

'हूँ···!'

'ऐसा करो चौधरी, शरद को भेज दो, एक यूनिट फ्रैश क्रासमैच कराकर लगा दो उमेश को । मैं अभी आ रहा हूँ ।' फ़ोन रख दिया मैंने !

'क्या हुआ अनु ?' दीदी और मधु ने एक साथ पूछा ।

'मैं समझ रहा हूं दीदी, उमेश अब···हो गया है' एक आह निकल गयी और उदासी की छाया फैल गयी ।

शाम के साये बढ़ चले और साथ ही बढ़ रही थीं उदासियाँ, सोचें, खयाल, मन में उथल-पुथल हो रही थी ।

'अनु, तू थोड़ा रैस्ट कर ले, रात को तो शायद उमेश के साथ रहोगे ।'

'रैस्ट नहीं दीदी, अभी वार्ड में जाना है, एक मीटिंग में जाना है, ब्लड बैंक में भी काम है···।'

मैं खामोश निढाल-सा बाहर निकल आया ।

अंधेरा फैल चला था । मुझे कहीं नहीं जाना था, दीदी से झूठ

बोलकर आया था। धीमे-धीमे मेरे कदम उमेश के कमरे की तरफ़ बढ़ रहे थे। जब मैं उमेश के कमरे में पहुँचा तो शरद उमेश को खून की बोतल चढ़ाने के लिए बाजू में प्रिक दे चुका था।

'हैलो भैया...।'

'हैलो शरद कुशल है न !'

'देख ही रहे हो।'

'क्यों पुत्तर...?' उमेश की मरी-सी आवाज़ में भी मज़ाक की चहक थी—'आज क्या लाये मेरे खाने को ?'

'क्या खाओगे...?'

'आज तो...सोचता हूँ एग-डोसा हो जाय।'

'ओ. के.।' कहकर ज्यों ही मैं बाहर निकला कि अनिल की कार रुकी।

'कहाँ जा रहा है अनु !'

'अनिल, चल ज़रा कॉफ़ी हाऊस तक चलते हैं, उमेश का मन ऐग-डोसा खाने का है, चल ले आते हैं।'

'अनु, क्या पोज़ीशन है उमेश की।'

'सॉरी अनिल, शायद आज की रात...' मेरे शब्द सहम गये थे।

'ओ नो, ऐसा मत कह अनु !'

'अनिल मेरे कहने से तो कुछ होने वाला नहीं, मेरा तो अनुमान भर है वर्ना तू क्या नहीं जानता उमेश मेरे लिए क्या है !'

कार रुक गयी थी। सामने कॉफ़ी हाऊस के बोर्ड की बत्तियाँ जल बुझ रही थीं। अनिल को साथ लेकर मैं कॉफ़ी हाऊस में प्रवेश कर गया ! तेज़ मसालों की बू, कॉफ़ी का धुआँ नाक में घुसता चला गया। उमेश का दोस्त वेयरा जॉन सामने आ खड़ा हुआ।

'गुड ईवनिंग सर...हमारा सॉब किधर है।'

'जॉन, तुम्हारा सॉब तो हस्पताल में है।'

'क्यों सर ?'

'बीमार है।'

'ओह...आप बैठिये सर, आपके लिए क्या लाऊँ ?'

'जॉन, मैं बैठने नहीं आया, तुम चार ऐग-डोसा पैक करा दो अपने सॉब के लिए एकदम बढ़िया बनवाना।'

मैं अनिल के साथ मैनेजर की ओर बढ़ गया था।

'हैलो सर, वह जोक वाला साहब नहीं आया आज ?'

'जोक़ वाला साहब तो शायद कभी नहीं आयेगा···।'

ऐसा क्या बोलता सॉब ?' जॉन भी आ गया था बोला—

'सॉब, आप तो बोत बड़ा डाक्टर है, हमारा सॉब को बचा लो।'

'जॉन, हम सब बेबस हैं, कुछ नहीं कर सकते !'

हॉस्पिटल के बाहर पार्किंग में गाड़ी खड़ी कर अनिल और मैं स्पेशल वार्ड की तरफ़ चल दिये।

'उमेश अब भी 'जोक' सुना रहा था। मगर उसका चेहरा पीला पड़ गया था···मेरा दिल बैठ गया।'

'हाय अनु, क्या लाया है ?'

'ऐग-डोसा, उमेश···।'

'वाह ! तुम जैसा दोस्त किसी-किसी के नसीब में होता है ?'

मैं चुप बिसूरता रहा।

'यार डॉक्टर, क्या हुकम देखा है तूने, एक सिस्टर आयी थी, कह रही थी साहब ने बोला इन्जेक्शन लगाने को। मैंने नहीं लगवाया, कितना वक्त रह गया है मेरे जीवन का ? अब मत सुला मुझे अनु, अब मत सुला !' उमेश गम्भीर था।

'मैं अभी चला जाऊँगा !' मैं किसी बहस में नहीं पड़ना चाहता था।

बात बदल दी। बहुत देर तक गपशप होती रही। मेरी आँखें उमेश के चेहरे पर टंगी थीं और उमेश की आँखों में इक लौ थी जो धीमी पड़ रही थी। बहुत देर तक नहीं बैठ सका मैं, घर चला आया।

अंधेरे का साम्राज्य था। उमेश की मौत के भय ने मुझे बुरी तरह से जकड़ लिया था। अंधेरे की उस स्याही में परछाइयाँ उभरीं, मृत्यु की काल्पनिक परछाइयाँ, अंधेरा और गहरा हो गया···रुचि भाभी का चेहरा नज़र आया···एकदम वीरान, इतना बेरौनक कि दोबारा देखने का साहस नहीं हुआ। मीरा आँखें फाड़े अविश्वास से

उमेश के बेजान जिस्म से कोई साँस टटोल रही थी···।

दीदी खामोश खड़ी थी, सपाट चेहरा, मानो कोई तपस्विनी हो जो मोह-माया से दूर हो।

पाल अंकल स्टैथोस्कोप से उमेश के दिल की कोई बची हुई धड़कन सुनने की कोशिश कर रहे थे। आँटी भीगी आँखों से तक रही थीं शून्य में!

अनिल के बाल बिखरे हुए थे।

मिश्रा···बड़ी भाभी···।

मधु···।

जॉन···काफ़ी हाऊस का मैनेजर···

खान भाई सर झुकाये हुए···

डॉ० जैन···मिसेज़ जैन खामोशी में डूबे···शरद···टूटा हुआ।

वार्ड बाय···नर्सें···दीवारें···कमरा···बैड···

सब कुछ बेजान पड़ा था···।

मैं खड़ा था···बिखरे बाल, बेतरतीब दाढ़ी···आँखें सूजी हुई, कपड़े फटे हुए···चीखना चाहता था···पर मुँह से आवाज़ नहीं निकल रही थी···

उमेश की आवाज़ गंभीर···शान्त···।

'अनु, अभी मैं जीवित हूँ तो तुम्हारा यह हाल है···जब मैं मर जाऊँगा, खुद तो मरोगे ही···और सबको भी मार डालोगे जिन्हें मैं तुम्हारे सहारे छोड़े जा रहा हूँ···।'

मैं काँप गया था···

डर के मारे चीख निकल गयी थी मेरी, पसीने से नहा गया था मैं···।

सहसा कमरा रोशनी से नहा गया···।

'क्या हुआ भैया?' मधु आँखें फाड़े देख रही थी मुझे।

अनिल भी आ गया था।

'लो भैया, पानी पी लो।'

पानी का गिलास मैंने मुँह से लगाना चाहा ही था कि गिलास हाथों

से छूट गया···काँच के टुकड़े कमरे में बिखर गये। मैंने दोनों हाथों में अपना सर पकड़ लिया···।

मधु टावल से पसीना पोंछ रही थी, मैं सिर झुकाये बैठा था।

'जाओ अनिल, सो जाओ···' मेरी आवाज़ अब भी काँप रही थी। फिर कहा—

'नहीं, अनिल एक काम कर, उमेश को देखकर आ।'

'अभी होकर आता हूँ।' अनिल बाहर निकल गया।

कोई बुरा सपना देखा था क्या? मधु ने पूछा।

'नहीं मधु, सपना नहीं था, मैं जाग रहा था कि अंधेरे की गहन दीवार पर सब कुछ अंकित होता चला गया।' मधु, आज की रात··· आज की रात शायद उमेश की आखिरी रात है···'

'ऐसा अशुभ मत बोलो भैया!' मधु ने अपनी हथेली से मेरा मुँह बन्द कर दिया!

बाहर टैक्सी के रुकने की आवाज़ सुनायी दी! टैक्सी का दरवाज़ा खुला, मिश्रा और भाभी बाहर निकले।

मधु और मैं दोनों चौंक उठे।

'भाभी जी, आप लोग इस वक्त···?'

भाभी की आँखें भरी हुई थीं! तभी अनिल लौट आया।

'अनु···तुम्हारा उमेश···जाने कैसे साँस धकेल रहा है···?'

भाभी, मिश्रा, अनिल उल्टे पाँव लौट गये। रह गये मधु और मैं!

'भैया धीरज रखिए, आप ही हौंसला खो देंगे तो और लोगों का क्या होगा?'

कुछ ही क्षण बाद शरद भागा आया बदहवास-सा···।

'भैया···जल्दी···उमेश भैया···की तबियत···।'

मैं नंगे पांव हस्पताल की ओर दौड़ पड़ा।

'आ अनु···आ गया तू···कहाँ था···इतनी देर तक···? ओह समझा···मेरी मौत से शायद डर गया होगा···।' उमेश की आँखें अध-खुली थीं···।

आक्सीजन···मैफ़ण्टीन···! डैकाड्रान···ग्लूकोज़···! खून की

रिसती हुई बूँदें···! खामोश डॉक्टर···!···उदास नर्सें! दवाएँ··· इंजैक्शन···ड्रिप···!

उम्मीदें···? प्रार्थनाएँ···दुआएँ ?

सभी जूझते रहे मृत्यु से···अनथक मेहनत के बाद दोपहर में उमेश की पलकें काँपीं और हम सबकी साँसें ठहर गयीं !

'अनु···इधर आ···रुचि···मेरे करीब आओ···।

'अनु···सारा जीवन माँगता···रहा···हूं तुमसे···वचन दे···अनु ···रुचि को सम्हाल लेगा···।'

हिचकियाँ···।

'रो मत अनु···ले·· सम्हाल अपनी भाभी को···' उमेश की आवाज़ काँप रही थी।

'जोक सुनाऊँ अनु···! सुन···एक आदमी था···उसे मालूम हुआ' ···हिचकी···पीड़ा की तेज़ लहर।

सियाह पड़ गया उमेश का चेहरा···आँखें पथरा गयीं···नब्ज़ डूब गयी···दिल सदा-सदा के लिए सो गया···।

हर तरफ़ चीखें···सिसकियाँ और हिचकियाँ···।

सबको हँसाने वाला सबको रुलाकर चला गया···।

रुचि भाभी सुधा दीदी से लिपटकर चीखने लगी।

मधु दीवार से सिर पटक-पटक कर रो रही थी···।

और मैं बुत-सा देख रहा था, उमेश का चेहरा अब भी मुस्करा रहा था···निचुड़ा हुआ चेहरा···जो मौत को भी जोक सुना रहा था···। उस चीख-पुकार के तेज़ दरिया में भी मैं सन्नाटे का बुत-सा खड़ा रहा न जाने कब तक···।

होश आया तो डॉ०, नर्सें अन्य लोग उमेश की आखिरी विदाई की तैयारी कर चुके थे··जाने कहाँ से खान भी आ पहुँचा था—

'मियाँ डाक्टर, खुदा की खुदाई के सामने हमारा बस नहीं चलता ···वो जो हुकुम करता है उसे मान लेने में ही हमारी भलाई है···तुम तो खुद इतते होशमन्द हो, कि तुम्हें कुछ कहना अच्छा नहीं लगता···।'

मैं खामोश सुनता रहा···।

खान जैसे आया था वैसे लौट गया···लोग उमेश को···नहीं, मेरे प्यारे उमेश के शरीर को जलाने की तैयारी करने लगे।

रात भी यूँ ही गुज़र गयी, किसी को किसी की खबर नहीं थी··· दो दिन और बीत गये···।

उमेश की मृत्यु की रस्में अदा हुईं···।

पाँचवे दिन हम उमेश की अस्थियाँ विसर्जित करने के लिए हरिद्वार चल दिये थे···।

अनिल, दीदी, भाभी, मधु, बड़ी भाभी और मैं एक कार में, दूसरी में पाल अंकल, आन्टी, मिश्रा, डॉ० जैन, शरद और डॉ० चौधरी साँझ ढलने पे हरिद्वार पहुँचे थे [

गंगा की लहरें···पूर्ण चन्द्रमा···धवल चाँदनी···हमारी परछाइयाँ टेढ़ी-मेढ़ी होकर मिल रही थीं···काँपते हाथों से वो राख का ढेर गंगा के फेनिल भाग में प्रवाहित किया और बहुत देर तक बैठे रहे थे···।

'शरद वर्मन दा की आवाज़ की हू-ब-हू नकल करता गा रहा था—

काहे को रोये···

सफल होगी तेरी आराधना।

स्नान के बाद सब लोग धर्मशाला लौट आये थे।

रुचि भाभी का चेहरा इतना गम्भीर था कि सहन नहीं हो पा रहा था, हर कोई खामोश था···।

रात कट गयी···।

सुबह सवेरे ही हम लोग चल दिये थे···वापस···

छठे दिन आज मुँह में कुछ डाला था···ऐसा लगता था कि अभी-अभी ताज़ा टाँके खुले हों मुँह के···।

रुचि भाभी की ज़िद से कुछ खा गया था मैं···सब लोग लौट रहे थे···।

रह गये थे दीदी, भाभी और मैं···

दिन···बीत रहे थे···।

भाभी दिन-पर-दिन परेशान हो रही थी···

एक दिन दीदी मुझसे बोलीं···

'अनु तेरी भाभी यहाँ से जाना चाहती है।'

संभलते-संभलते काफ़ी समय अतीत में खो गया। रुचि भाभी ने कई बार दिल्ली जाकर अपनी पुरानी नौकरी में व्यस्त हो जाना चाहा लेकिन मेरे और सुधा दीदी के उदास होते ही वह हर वार रुक जाती रहीं, आखिर उन्होंने मेरे साथ रक्तदान-शिविरों का ऐसा सिलसिला शुरू किया कि दिन हवा-से और ग़म रुई के बादलों-से उड़ने लगे··· ।

एक बरस बीत गया···अनिल ने शहर से बाहर ज़मीन खरीद ली थी और हमारे सपनों का ताजमहल एक हस्पताल···बनना शुरू हो गया था···सभी व्यस्त थे—

मैं, सुधा दीदी, रुचि भाभी, अनिल··· ।

एक सिंदूरी संध्या को रक्तदान-शिविर से नये बन रहे हस्पताल को देखता हुआ जब घर लौटा तो देखा, सुधा दीदी और अनिल छत पर बैठे थे आमने-सामने, मैं वहीं रुक गया।

'मैं जानती हूँ अनिल, तुम मुझे बहुत चाहते हो। मैं इस सचाई से भी इन्कार नहीं करूँगी कि मैंने तुमसे प्यार किया···तुम्हें चाहा है··· लेकिन शायद परिस्थितियों को कुछ और ही मंजूर था!' तुम मुझसे बहुत प्रेम करते हो न अनिल, प्रेम का अन्त विवाह ही नहीं···प्रेम करने वालों को बलिदान देने पड़ते हैं। आज वह क्षण आ गया है। जब तुम्हें यह बलिदान देना होगा।'

'आप हुक्म तो कीजिए सुधा जी!'

'अनिल, तुम रुचि के साथ विवाह कर लो!'

मानो एक विस्फोट के आतंक से दहल-सा गया अनिल··· ।

'सुधा···यह···यह···क्या कह रही हो···?' उसका चेहरा पथरा गया था।

'अनिल मैंने तो आजन्म विवाह न करने का फ़ैसला किया है··· मैं रुचि को तुम पर थोप नहीं रही···'

'मगर···'

'चाहो तो हाँ कर दो, चाहो तो नहीं···।' लगा, सुधा दीदी की आवाज़ किसी गहरे कुएँ से आ रही है।

'सुधा, मुझे कुछ सोचने का समय दो···' अनिल उठ खड़ा हुआ और तेज़ी से सीढ़ियाँ उतर गया। मैंने खुद्र को ओट में छुपा लिया था···।

'आज हमारी दीदी किस गहरी सोच में खोई हुई हैं?' ···मैंने चहकने का अभिनय किया।

'अरे अनु, तू कब आया?'

'बस, चला ही आ रहा हूँ।'

'कहाँ तक पहुँच गया है तेरा हस्पताल?'

'उसमें तो अभी कुछ समय लगेगा दीदी।' लेकिन देख रहा हूँ कि आपकी योजना पूरी होने में देर नहीं लगेगी···।'

'मेरी···मेरी कौन-सी योजना···?' दीदी की आँखों में विस्मय था।

'मैंने सब सुन लिया है···।'

'ओह···!' एक गहरी सांस ली सुधा दीदी ने!

'मैं समझता हूँ अनिल इन्कार नहीं कर सकेगा।'

'अनु, रुचि को तू ही समझायेगा··· ।'

'बेफ़िक्र रहो दीदी, भाभी को मैं मना लूँगा।'

तीन महीने बाद।

पन्द्रह अगस्त की सुनहरी सुबह थी। हल्की-सी बारिश से ज़रा भीगने के बाद सारा वातावरण धूप में मुस्करा रहा था। हस्पताल···

उमेश और हम सब के स्वप्नों के ताजमहल के द्वार आज आम जनता के लिए खोले जाने वाले थे। हस्पताल के इंचार्ज थे डॉ० अनिल और उसी के साथ सटे 'ब्लड बैंक' की इंचार्ज थीं श्रीमती रुचि अनिल ! उद्घाटन के लिए राज्यपाल महोदय के आगमन की प्रतीक्षा थी।

सब उत्साह से बन्दोबस्त में जुटे थे···। एक मैं और सुधा दीदी ही एक ओर खड़े थे—खामोश, उस विशाल खामोश इमारत को देखते हुए जिसमें न जाने किस-किस की खामोशियाँ खोयी थीं, किस-किस की खुशियों के अंकुर उगाने के लिए !

□□□



कुलभूषण दीप

जन्म : 29 नवम्बर 1956

स्नान : करनाल (हरियाणा)

शिक्षा : बी० एस-सी०, डी० पी-एच० डी० एल-टी०

लेखन : न शौक है न व्यवसाय, एक अन्दरूनी कुलबुलाहट को वैसे ही पन्नों पर उतार देने की सहज प्रक्रिया जैसे अन्तर के आवेग को गुनगुना कर चैन मिल जाय…।

प्रकाशन : छुट-पुट रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में, कविताओं की कलमबंदी अधिकांशतः उर्दू में हुई है और गद्य-रचनाओं की हिन्दी में। दोनों विधाओं में आकाशवाणी से अनेकशः प्रसारण। उपन्यास-रूप में 'खामोश इमारत' ही पहली कृति।

सम्पत्ति : व्यापार के साथ-साथ समाज-सेवा के कार्यों में संलग्न।

अंशु प्रकाशन
152/3, जैकब पुरा, गुड़गाँव-122001